जैन भारती

फरवरी 2015 • वर्ष 63 • अंक 2 • वार्षिक ₹ 200

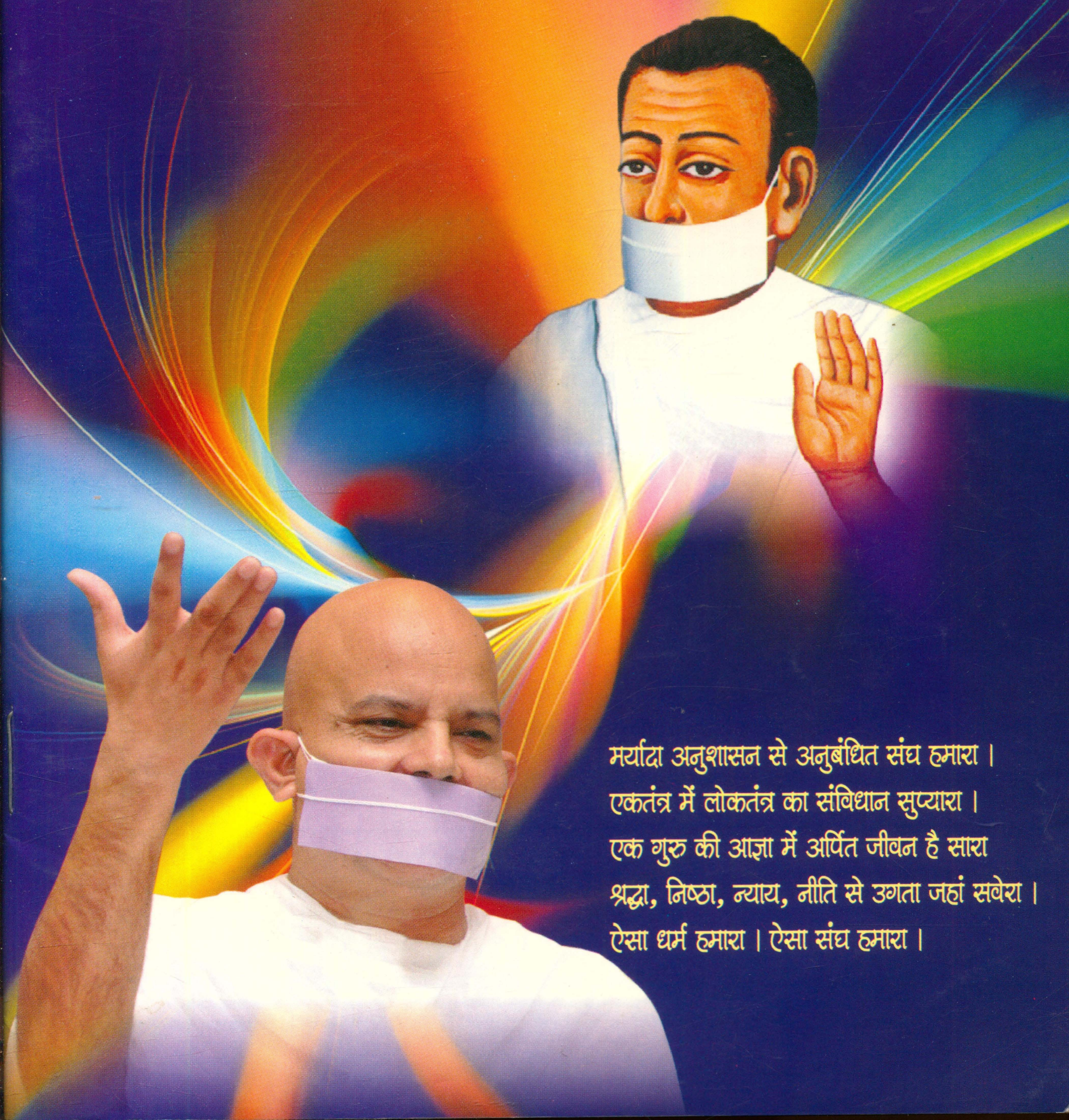

मर्यादा अनुशासन से अनुबंधित संघ हमारा।
एकतंत्र में लोकतंत्र का संविधान सुप्यारा।
एक गुरु की आज्ञा में अर्पित जीवन है सारा
श्रद्धा, निष्ठा, न्याय, नीति से उगता जहां सवेरा।
ऐसा धर्म हमारा। ऐसा संघ हमारा।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN

A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती

वर्ष 63 • फरवरी 2015 अंक 2

कोटा (गांधीनगर)

संपादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	मार्गदर्शक कौन?	आचार्य महाश्रमण	7
3.	रच दिया नूतन सबेरा	साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	10
4.	प्रेरणा के उजले पल	गुरुदेव तुलसी	11
5.	हाजरी का अर्थ है नियमों की स्मृति	आचार्य महाप्रज्ञ	15
6.	मेरं सम्मं पालइस्सामि	मुनि संबोध कुमार	19
7.	साधना का अभिनव प्रयोग है तेरापंथ	साध्वी कनकश्री	21
8.	मर्यादा का गीत	साध्वी कान्तयशा	23
9.	तेरापंथ का संविधान: सुरक्षा की सीमाएं	डॉ. शांता जैन	24
10.	विकास यात्रा तेरापंथ शासन की	साध्वी विमलप्रज्ञा	29
11.	परमार्थ के महान साधक आचार्य भिक्षु	साध्वी मुदितयशा	31
12.	तेरापंथ का मेरुदंड: तेरापंथ धर्मसंघ	मुनि मदनकुमार	35
13.	मर्यादा और अनुशासन बंधन नहीं	प्रो. सुमेरचंद जैन	37
14.	जहां एकतंत्र के साथ श्रद्धातंत्र है	मुनि पीयूषकुमार	39
15.	सादगी का अर्थ	मुनि आदित्यकुमार 'नचिकेता'	41
16.	सबके लिए मर्यादा जरूरी	डॉ. हीरालाल छाजेड़ (जैन)	42
17.	मर्यादा का संदेशवाहक पर्व	मुनि राकेशकुमार	43
18.	पावरफुल वुमैन हैं	----	45
19.	एक में अनेक गुणों का समवाय	साध्वी शुभप्रभा	46
20	देश के लिए कौन-सा सपना गढ़ा है?	----	49
21.	कुछ ऐसा हो, जो पहचान बनाए	----	51
22.	डिग्री से डॉक्टर बनता है, इनसान नहीं	स्मृति ईरानी	53
23.	तीन लाख रु. की तीन बातें	डॉ. साध्वी ललितरेखा (खाटू)	54
24.	आरोहण के क्षणों में राजकुमार नेमि	मुनि सुखलाल	55
25.	समाधान की पदचाप	साध्वी शुभ्रयशा	58
26.	वैचारिक सफरनामा अर्थशास्त्र के आस-पास	साध्वी कल्पलता	61
27.	ध्यान में सफलता पाएं	साध्वी राजीमती	65
28.	सूचना (जैन भारती अब नये कलेवर में)	---	66

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

विचार स्वातंत्र्य का सम्मान

गणतंत्र का अर्थ है–अनेक शासकों द्वारा चालित राज्य। जनतंत्र जनता का राज्य होता है। गणतंत्र की अपेक्षा जनतंत्र अधिक विकासशील है। विकास की कसौटी है–स्वतंत्रता। स्वतंत्रता का मूल्य है आध्यात्मिक विचार। स्वतंत्रता का वास्तविक मूल्यांकन धार्मिक जगत में ही होता है। राजनीति में गणतंत्र या जनतंत्र हो सकता है, पर स्वतंत्रता का विकास नहीं हो सकता।

राज्य का मूल मंत्र है–शक्ति और धर्म का मूल मंत्र है–पवित्रता।

हृदय की शुद्धि जिस अनुशासन को स्वीकार करती है, वह है धर्मशासन।

विवशता से जो अनुशासन स्वीकार करना होता है, वह है राज्यशासन।

जहां शक्ति है वहां विवशता होगी और जहां पवित्रता होगी वहां हृदय की शुद्धि होगी।

हृदय की शुद्धि जिस अनुशासन को स्वीकार करती है वह है धर्मशासन। विवशता से जो अनुशासन स्वीकार करना होता है वह है राज्यशासन। धर्मशासन हृदय का शासन है। इसलिए उसे एकतंत्र, गणतंत्र, जनतंत्र जैसी राजनैतिक संज्ञा नहीं दी जा सकती। फिर भी यदि हम नामकरण का लोभ संवरण न कर सकें तो आचार्य भिक्षु की शासन प्रणाली को एकतंत्र और जनतंत्र का समन्वय कह सकते हैं।

एकतंत्र इसलिए कि इसमें आचार्य का महत्त्व सर्वोपरि है। आचार्य सर्वोपरि हैं, इसलिए इसे एकतंत्र की संज्ञा मिल जाती है, यदि यह राजनीतिवाद होता। किंतु यह धर्मशासन का एक प्रकार है। इसमें आचार्य मानने के लिए दूसरे विवश नहीं किए जाते, किंतु साधना करने वाले स्वयं आचार्य को महत्त्व देते हैं। उनके निर्देश में ही अपनी यात्रा को निर्बाध समझते हैं। जनतंत्र इसलिए कि आचार्य अपने शिष्यों पर अनुशासन लादते नहीं, किंतु उन्हीं के हित के लिए उसकी आवश्यकता समझाकर अनुशासित करते हैं, इसलिए यह न कोरा एकतंत्र है और न कोरा जनतंत्र, किंतु एकतंत्र और जनतंत्र का समन्वय है

महोत्सव का मेला

भारतीय संस्कृति और इतिहास में त्योहारों की एक समृद्ध परंपरा है। किसी न किसी धर्म और संप्रदाय से जुड़कर वर्ष का हर दिन कोई-न-कोई त्योहार बन जाता है। त्योहार सिर्फ मनोरंजन का प्रतीक ही नहीं होता, उसकी अगवानी में व्यक्तित्व विकास के आदर्शों की अनगिनत योजनाएं सिमटी हुई रहती हैं। इनके बहाने लोग घर-आंगन को ही नहीं, अपने आस-पास के जड़-चेतन, सभी को संवारते, सजाते एवं उनमें प्राणवत्ता भरने का प्रयास करते हैं।

ऐसे दिन प्रेरणा भरते हैं सनातन और नवीनतम युगीन संस्कृति एवं संस्कारों की समन्विति में। कहीं नया जोड़ा जाता है तो कहीं पुराने का सम्मान होता है। तेरापंथ धर्मसंघ की ऐतिहासिक परंपरा से जुड़ा ऐसा ही एक त्योहार है जिसे 'मर्यादा-महोत्सव' के नाम से पहचाना जाता है। यह लौकिक पर्व नहीं है। इस दिन न राग-रंग, न नाच गाना, न विशाल भोज, न मनोरंजन का कोई आयोजन। सिर्फ सामुदायिक चेतना के अभ्युत्थान की संयोजना में धर्मसंघ का दिल और दिमाग नए आदर्शों को अनुशासना से जोड़ता है। इस पर्व पर साधुता की तेजस्विता, कर्तृत्व की कर्मण्यता और निर्माण की निष्ठा का प्रशिक्षण होता है। पूरे धर्मसंघ की आचार्य द्वारा सारणा-वारणा की जाती है।

मर्यादा और अनुशासन से बंधा यह त्योहार 'एक गुरु और एक विधान' के गुणात्मक सूत्र से अनुबंधित है। पूरे संसार में कहीं ऐसा कोई देश नहीं होगा जहां मूल्यों के योगक्षेम में मर्यादा और अनुशासन की पूजा होती हो। जैन परंपरा का जैन श्वेतांबर तेरापंथी धर्मसंघ ही एकमात्र ऐसा आम्नाय है जहां एक आचार्य की अनुशासना में सैकड़ों साधु-साध्वियों का, लाखों श्रावक-श्राविकाओं का आध्यात्मिक विकास होता है।

इस संघ में माघ शुक्ला सप्तमी का दिन धार्मिक अनुष्ठान का महत्त्वपूर्ण दिन माना जाता है। इस दिन संघ के संविधान की अभिवंदना, वाचना, अनुप्रेक्षा होती है और इसी बुनियाद पर साधु-साध्वियों का अतीत, वर्तमान और भविष्य जुड़ा रहता है।

इस संघ की परंपरा में भले ही मंदिरों में जाकर भगवान की प्रार्थना न की जाए मगर प्रार्थना के लिए मन को मंदिर बनाने का प्रशिक्षण सभी को मिलता रहता है। भले ही मस्जिद में जाकर मत्था टेक नमाज न पढ़ी जाए मगर हर सुबह-शाम प्रत्येक साधु-साध्वी सहज स्वीकृत आचारपरक मर्यादाओं का 'संकल्प पत्र' पढ़ता है। भले ही गिरजाघर में बाइबिल पढ़कर अपने पापों को स्वीकृति देने की रस्म न निभाई जाए मगर साधुता को जीने वाली हर चेतना अपनी कृत भूलों की स्वीकृति, गुरु से प्रायश्चित्त एवं पुनः न दुहराने का संकल्प लेकर नई ऊर्जा ग्रहण करती है।

दीवाली की तरह भले घर के दीवट पर दीये रोशन न किये जाएं मगर गुरु चरणों में बैठकर आत्मदीप में यहां तेल और बाती अवश्य डाली जाती है। भले ही रंगों के गुलाल से होली न

खेली जाए मगर शिक्षा, साधना, सेवा, शोध, साहित्य, संस्कृति और संस्कार की सप्तपदी के शुभ्र रंगों से मन और चेतना को रंगा जाता है। महोत्सव का दिन अभ्युदय के साथ त्योहार बनता है। मर्यादा-महोत्सव के दिन सबकुछ अभिनव, आकर्षक, जीवंत एवं प्रेरणादायी होता है।

यह माह इसलिए भी प्रणम्य एवं अभिनंदनीय है कि इसी माह जैन शासना के प्रभावक एवं प्रभुतासंपन्न आचार्य के रूप में ख्यातिप्राप्त नवमाधिशास्ता आचार्य तुलसी ने अपने आचार्य-पद का विसर्जन कर युवाचार्य महाप्रज्ञ को उत्तराधिकार की चादर ओढ़ा कर संघ को भविष्य का सुरक्षा कवच पहनाया था। इस पद-विसर्जन में कहीं कुछ अभाव की अनुभूति या अधूरेपन का अहसास नहीं था और सत्ता की उपलब्धि में कहीं अभिमान का सिर ऊंचा नहीं था। साधुता की जीवंतता का साक्षी वह क्षण सबको श्रद्धा, समर्पण, विनय, विवेक, आज्ञा और अनुशासन का हार्द समझा गया और इस बात का सबूत दे गया कि मौलिक गुणवत्ता, निर्लेपता और सच्ची साधुता के बल पर सदियों बाद भी तेरापंथ धर्मसंघ प्राणवान है, जीवंत संघ है।

इसी माह में तेरापंथ के साध्वी-समाज को एक कुशल नेतृत्व मिला था 'साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा' के रूप में। वर्षों पहले सिमटा-सिमटा संकोचशील एक अनजाना चेहरा उभरा था मगर आज नेतृत्व की कसौटी पर खरा उतरकर विकास के अनेक नये क्षितिज छू गया। उनके नेतृत्व ने साध्वी-समाज का योगक्षेम किया। रचनात्मक विकास की ऐसी कोई विधा नहीं छोड़ी जहां साध्वियों का कर्तृत्व सामने न आया हो। संघीय व्यवस्था में और चरित्र संपालना में आपका कार्यकौशल, बौद्धिक-निर्णायकता, कल्याणी करुणा और निःस्पृह चेतना ने हर मोड़ पर सबको आश्वस्ति दी।

इसी माह महासभा का अधिवेशन होता है। पूरे समाज को एक जाजम पर बैठकर आमने-सामने संवाद करने का मौका मिलता है, क्योंकि मर्यादा-महोत्सव साधु-साध्वियों के साथ श्रावक-समाज की रचनात्मकता को भी प्रायोगिक भूमिका देता है। समाज के विकास और नव निर्माण के परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक मौलिक चिंतन मनन होता है और जिन श्रावक-श्राविकाओं को आचार्य प्रवर समय-समय पर संबोधन देते हैं, उन्हें सम्मानित करने का विशेष आयोजन होता है, जो सबको नई ऊर्जा और नई प्रेरणा दे जाता है।

बहुत वर्षों बाद कभी ऐसा अवसर आता है जब सभी ग्रह-नक्षत्र एक समय एक साथ मिलकर ऊर्जा को संवर्धित करते हैं, पर तेरापंथ धर्मसंघ में तो प्रतिवर्ष ऐसा अवसर उपलब्ध होता है। इसलिए यह मर्यादा-महोत्सव अनेक उत्सवों और संभावनाओं को अपने में समेटे आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। जरूरत है इस अवसर पर श्रावक की भूमिका ज्यादा तेजस्वी और सक्रिय बने।

राष्ट्र की वार्तमानिक परिस्थितियों में फैलता वैचारिक प्रदूषण, आर्थिक अपराधीकरण, रीति-रिवाजों में पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण, धार्मिक संस्कारों से कटती युवापीढ़ी का रवैया, समाज में बढ़ता सत्ता, प्रतिष्ठा और पैसे का अंधाधुंध आकर्षण जैसे जीवन-संदर्भों के साथ किसी भी कीमत पर समझौता न कर हम समझ के साथ संस्कृति को योगक्षेम देने का संकल्प करें। तभी मर्यादा-महोत्सव संघ की बुनियाद पर समाज और राष्ट्र को नई दिशा दे सकेगा। आइए, हम निर्माण के सिर्फ सपने न देखें, उन्हें सच करने का संकल्प करें। प्रस्थान का यही क्षण हमारी सफलता का विश्वास होगा।

—मुमुक्षु शान्ता

मार्गदर्शक कौन?

दर्शनाचार का एक विवेच्य विषय है–मार्गदर्शक कौन? सबसे पहले यह निर्धारित होना चाहिए कि हमारी मंजिल क्या है? जब तक हमारा गंतव्य ही सुनिश्चित नहीं होता है, तब तक न तो मार्ग की अपेक्षा है और न ही मार्गदर्शक की। एक यात्री स्टेशन पर गया और टिकट बाबू से कहा–मुझे टिकट दो।

टिकट बाबू–कहां की टिकट दूं?

यात्री–मेरे ससुराल की टिकट दे दो।

टिकट बाबू–तुम्हारी ससुराल कहां है?

यात्री–यह तो मुझे पता नहीं।

जिसे अपना गंतव्य ही पता नहीं है, वह कैसे यात्रा कर पाएगा। हमें अपने जीवन में लक्ष्यनिर्धारण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। अर्हत या सिद्ध हमारे आदर्श हैं। इसका मतलब है कि वीतरागता हमारा मुख्य लक्ष्य है। हमें वीतरागता की पूर्णता तक पहुंचना है। वहां तक जाने के लिए हमें मार्ग का चुनाव करना होगा। लक्ष्य सही हो, मार्ग सही हो और मार्गदर्शक अच्छा हो तो मंजिल की प्राप्ति हो सकती है।

गुरुधारणा में तीनों चीजें आ जाती हैं–देव अर्थात् अर्हत या सिद्ध हमारा लक्ष्य है। उसका मार्ग है धर्म की साधना और मार्गदर्शन करने वाले गुरु होते हैं। इस दुनिया में गुरु का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि जहां हमें पहुंचना है, उसका रास्ता बताने वाले गुरु होते हैं। हमारे धर्मसंघ में दस आचार्य हुए हैं। आठ के बारे में तो मैंने पढ़ा है या सुना है या कुछ मनन किया है, किंतु दो आचार्यवरों को तो मैंने आंखों से देखा है। हमें परमाराध्य आचार्य तुलसी गुरु के रूप में प्राप्त हुए। उनके मार्गदर्शन में अनेक लोगों ने अपने जीवन की दिशा बदली। अनेक साधु-साध्वियों और लोगों को परम पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी से साधना के विकास का निदर्शन और पथदर्शन प्राप्त हुआ। हम इस मायने में भाग्यशाली हैं कि हमें गुरुदेव तुलसी के उपपात में, साये में रहने का मौका मिला। हमारे धर्मसंघ में आचार्य के दो रूप होते हैं–एक गुरु का और दूसरा शास्ता का। उन्हें दोनों दायित्व निभाने होते हैं–शिष्यों के विकास के लिए, श्रावक समाज के विकास के लिए गुरु की भूमिका अदा करना आवश्यक है तो संघ की सुव्यवस्था के लिए शास्ता का दायित्व निभाना भी आवश्यक होता है।

उनके बाद परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी हमें गुरु के रूप में मिले, मार्गदर्शक के रूप में मिले। हमने देखा कि वे किस प्रकार शिष्यों का मार्गदर्शन करते और उनकी साधना का पथ प्रशस्त करते थे। अनेक लोगों को उनके प्रवचन के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से पथदर्शन प्राप्त करने का मौका मिला है।

आचार्य महाश्रमण

गुरु का काम होता है शिष्यों का पथदर्शन करना। एक बाल मुनि को कैसे समझाना, एक प्रबुद्ध मुनि को कैसे समझाना, अबुद्ध को कैसे समझाना, इसमें गुरु निपुण होते हैं। उनके समझाने का तरीका विलक्षण होता है। गुरुदेव तुलसी संभवतः जोधपुर में विराजमान थे। एक भाई आया और उसने गुरुदेव तुलसी से पूछा कि हमारा बच्चा गुम हो गया, उसको खोजूं या नहीं? गुरुदेव ने कहा–बच्चा कहां जाएगा। वह इधर-उधर ही कहीं मिल जाएगा। फिर पूछा–बच्चे को खोजूं तो धर्म होगा या पाप? तब गुरुदेव ने सोचा कि यह तो अटकाना चाहता है। गुरुदेव ने कहा–आज हमें पूछने आए हो कि बच्चे को खोजूं तो धर्म होगा या पाप। जब बच्चे को पैदा किया था, तब तुमने क्यों नहीं पूछा कि बच्चा पैदा करूं या नहीं? इसमें धर्म होगा या पाप? प्रश्नकर्ता मौन हो गया। किस समय किसको कैसे उत्तर देना, यह व्यक्ति की प्रबुद्धता होती है।

तत्त्व को समझने की दृष्टि से आए हुए आदमी को कैसे समझाना और बात को अटकाने के लिए आए हुए आदमी को कैसे समझाना, यह गुरु की अपनी गुरुता होती है या होनी चाहिए। गुरु का काम है ज्ञान देना, पथदर्शन करना।

प्रश्न हुआ–गुरु कौन होता है? समाधान मिला–शुद्ध साधु गुरु होता है। ऐसे तो सब शुद्ध साधु गुरु हैं, किंतु हमारी परंपरा में आचार्य को गुरु का स्थान दिया गया है। आचार्य तीर्थंकर के प्रतिनिधि होते हैं और साधु-संस्था के प्रतिनिधि भी आचार्य होते हैं। तेरापंथ में आचार्य को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। हमारे यहां एक घोष बोला जाता है–

तेरापंथ की क्या पहचान?
एक गुरु और एक विधान।।

गुरु पर शिष्यों को तैयार करने का जिम्मा होता है और मेरे खयाल में तेरापंथ के आचार्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जिम्मा या दायित्व होता है अपनी प्रतिकृति के रूप में किसी को नियुक्त कर देना, मनोनीत कर देना। जब तक अपनी प्रतिकृति को तैयार नहीं किया जाता है, तब तक एक विशेष कार्य अवशेष की सूची में रहता है। हमारे धर्मसंघ में प्रायः जागरूकता रही है कि भावी व्यवस्था यथासमय हो जाए। परम पूज्य माणकगणी की एक घटना तो है, जहां उत्तराधिकारी का मनोनयन नहीं किया जा सका। मात्र 42-43 वर्ष की अवस्था में आगे की व्यवस्था करना आचार्यवर को कुछ अटपटा लग रहा था। खैर, जो नियति को मंजूर था, वही हुआ। वे अपनी प्रतिकृति को दिए बिना ही पधार गए।

गुरु और शिष्य का एक अपना आत्मीय संबंध होता है अथवा होना चाहिए। गुरु के प्रति कभी दुराव नहीं होना चाहिए। हमारे धर्मसंघ में तो सबसे पहला संबंध किसी के साथ है तो वह गुरु के साथ है या संघ के साथ है। गुरु संघ के ही प्रतीक हैं। व्यक्ति सब बाद में हैं। हमारे साधु-साध्वियों की तो यह भाषा ही है कि हमने गुरु के भरोसे घर छोड़ा है और वास्तव में सब गुरु के बाद में ही रहना चाहिए। एक अग्रणी भी बाद में होता है। सबसे पहले अपना कोई है तो गुरु है। संघ पहले नंबर पर है।

यदि व्यक्तियों को मुख्य मान लें और गुरु को गौण कर दें तो आदमी किसी के साथ भी जा सकता है। पर हमारी आस्था का केंद्र संघ और गुरु होना चाहिए। आचार्य सोमप्रभ सूरि ने कहा–

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते,
प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः,
स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम्।।

अपना हित चाहने वाले शिष्यों के द्वारा वे गुरु सेवनीय होते हैं, जो स्वयं निरवद्य मार्ग पर चलते हैं और बिना किसी स्वार्थ के दूसरों को भी उस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, जो स्वयं का कल्याण करते हुए दूसरों का कल्याण करने में सक्षम होते हैं।

बस का ड्राइवर अगर अंधा है और उसमें बैठने वाले यात्री चक्षुष्मान हैं तो वह अंधा ड्राइवर यात्रियों को कहां ले जाएगा और कहां दुर्घटना हो जाएगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। जिस बस में यात्री सारे अंधे हैं, पर ड्राइवर चक्षुष्मान है, जागरूक है तो वह सौ अंधों को भी किसी अच्छी जगह पर अथवा यथास्थान ले जा सकता

है। जो ड्राइविंग करने वाला है, नेतृत्व करने वाला है, उसे जागरूक रहना चाहिए ताकि वह साथ वालों को सही जगह पर ले जा सके।

गुरु अथवा आचार्य एक ड्राइवर के समान होते हैं। संघ को हम हवाई जहाज मानें तो आचार्य उसके पायलट होते हैं। संघ को बस मानें तो आचार्य उसके ड्राइवर होते हैं। पायलट और ड्राइवर का बड़ा महत्त्व होता है। यात्री उस समय उनकी शरण में होते हैं।

शिष्य भी संघ और गुरु की शरण में होते हैं। यद्यपि मेरा तो यह मानना है कि गुरु या आचार्य से भी बड़ा संघ है। शासन सबसे बड़ा है। आचार्य भी बाद में हैं, शासन पहले है। हम सब जिनशासन की शरण में हैं और उसमें भी हम लोग भैक्षव शासन की शरण में हैं। गुरु हमें तारने वाले होते हैं। इसलिए उनका भी विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि वे हमारा पथदर्शन करते हैं।

गुरुदेव तुलसी ने सुंदर कहा है–

धरमाचारज मुझ तारो,
मैं लीन्हो शरण तुम्हारो।
है और न कोई चारो।।
भवसागर है अथग अमित जल,
नहिं है निकट किनारो।
जबर ज्वार रै झोलां मांहि,
बीत्यो जाय जमारो।।

सामान्य रूप में एक सदाचारी गृहस्थ भी जो ज्ञान देने वाला होता है या कुछ बताने वाला होता है, वह भी गुरु माना गया है। एक अक्षर का ज्ञान देने वाला भी गुरु होता है। शासन महास्तंभ हेमराजजी स्वामी जीतमलजी स्वामी के विद्यागुरु थे। श्रीमद् जयाचार्य ने उनके बारे में लिखा है–**मैं बिंदु था उन्होंने मुझे सिंधु के समान बना दिया।**

अपने विद्यागुरु के प्रति उनके मन में कितना सम्मान का भाव था। हमें भी जिनसे मार्गदर्शन मिले, उनके प्रति हमारे मन में भी सम्मान का भाव रहना चाहिए। मुख्य रूप से गुरु ही मार्गदर्शक होते हैं। आदमी को योग्य गुरु प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए और योग्य गुरु के पथदर्शन में आगे बढ़ना, गति करना उसका लक्ष्य रहना चाहिए। ❑

आर्हत् वाङ्मय में कहा गया—
समाए पेहाए परिव्वयंतो,
सिया मणो निस्सरई बहिद्धा।

साधक इंद्रिय संयम की साधना करता है, मन-नियंत्रण की साधना करता है, समता की प्रेक्षा करता है फिर भी इंद्रियां बाहर चली जाती हैं, मन भी बाहर चला जाता है। जैसे स्वास्थ्य का ध्यान रखते-रखते भी कभी-कभी बीमारी हो जाती है। खाने का संयम है, रहन-सहन का संयम है फिर भी कोई ऐसा निमित्त मिलता है कि बीमारी हो जाती है। वैसे ही साधना करते-करते कदाचित् मन बाहर चला जाए तो साधक उसे वापस लाने का प्रयास करे। जहां कहीं भी मन, वचन, काया की दुष्प्रवृत्ति होती नजर आए तो साधक अपने मन को वापस खींचने का, वाणी को संयमित करने का, शरीर की चेष्टा को संयमित करने का प्रयास करे।

रच दिया नूतन सबेरा

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

जो अंधेरों से लड़ा तोड़ा तमस का सघन घेरा।
दे गया ध्रुव रोशनी उस भिक्षु को प्रणिपात मेरा।।

क्रान्तद्रष्टा युगपुरुष ने कुप्रथाओं को कुरेदा,
मुक्तिकामी चेतना से बन्धनों का व्यूह छेदा।
जैन वाङ्मय का सघन स्वाध्याय करता ही रहा जो,
किन्तु सुख-सुविधा-पिपासा हुई पलभर भी न पैदा।
छोड़ स्थानक प्रेतवन में ही किया पहला बसेरा।।

क्रान्ति की जलती मशालें थाम हाथों में चला जो,
शुष्क मरुधर की धरा पर कल्पपादपवन फला जो।
शान्ति का सन्देश जन-जन को दिया निज जिन्दगी से,
ज्योति की बनकर शिखा निर्धूम निर्भय हो जला जो।
निराशा की यामिनी में रच दिया नूतन सबेरा।।

थी न पगडंडी कहीं पर पथ नया जिसने बनाया,
हे प्रभो! यह पन्थ तेरा कर समर्पण तोष पाया।
बवंडर भारी विरोधों के खड़े थे हर कदम पर,
उतर कर गहराइयों में सृजन का उत्सव मनाया।
नहीं चित्रित कर सका उस चित्र को कोई चितेरा?

प्रेरणा के उजले पल

गुरुदेव तुलसी

तुलसी वाङमय के 108 ग्रंथों में एक ग्रंथ है सीख सुमत, जो गुरुदेव तुलसी द्वारा समय-समय पर साधु-साध्वियों को दी गई सीख का एक महत्त्वपूर्ण संकलन है। इसे पढ़ने पर लगता है कि यह गुरु की शिक्षाओं का उपनिषद है। इसे साधुता की गीता भी कहा जा सकता है। यह सिर्फ सीख ही नहीं है, जीवन की संजीवनी बूटी है। गुरु द्वारा दिया गया ऐसा आशीर्वाद है जो कदम-कदम पर पहरेदार बनकर खड़ा है। साधुता से जुड़े हर पक्ष पर गुरुदेव ने अमूल्य शिक्षाएं दी हैं, मर्यादा और अनुशासन की जीवंत-मीमांसा करके उनकी सामाजिक, आध्यात्मिक मूल्यवत्ता पर प्रकाश डाला है। इस ग्रंथ की कुछ शिक्षाएं हम जैन भारती के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं, क्योंकि यह सीख सिर्फ साधु-साध्वियों के लिए ही नहीं है, श्रावक समाज के लिए भी स्मरणीय और अनुकरणीय है।

साधु जीवन में दो प्रकार के गुण होते हैं—मूलगुण और उत्तरगुण। तप, जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि की साधना आवश्यक है, पर ये मूलगुण नहीं हैं। कोई दंभी या पाखंडी भी ऐसा कर सकता है। मौलिक गुण है—क्षांति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव। इन चारों गुणों को धर्म के चार द्वार के रूप में निरूपित किया गया है। इन गुणों का विकास वहीं हो सकता है, जहां अध्यात्म का विकास हो। किसी भी परिस्थिति में अपनी सहज प्रस्तुति सरलता व सचाई का मार्ग है। मुखौटा लगाकर व्यक्ति दूसरों को ही धोखा नहीं देता, स्वयं भी धोखा खाता है। इससे साधुत्व विकृत होता है। इसलिए क्रोध, मान, माया और लोभ का परिहार कर क्षमा आदि आत्मगुणों को विकसित करने में अपनी शक्ति का नियोजन करना सीखो।

साधु जीवन की पहली शर्त है—परिवर्तन में विश्वास। जिसका जो स्वभाव है, उसे अपरिवर्तनीय मानकर बैठ जाना भारी भूल है। इसी प्रकार अपनी असत् प्रवृत्ति के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराना भी कम भूल नहीं है। जो व्यक्ति ऐसा मानते हैं, वे यंत्र बन जाते हैं। उन्हें अपनी अनंत शक्तियों का बोध नहीं होता। साधना का जीवन जागरूकता का जीवन है। उसके लिए मैं आज कुछ सूत्र सुझा रहा हूं—

1. महान बनने का प्रयत्न करो, पर महत्त्वाकांक्षी मत बनो।
2. अनुकूल और प्रतिकूल किन्हीं भी परिस्थितियों में अपना धैर्य मत खोओ।
3. अकरणीय कार्य हो जाने पर उसे न छिपाओ और न झुठलाओ।
4. साधना से प्रतिकूल आचरण हो जाए तो वहां से उसी क्षण अपनी आत्मा को हटाकर यह संकल्प करो कि ऐसी भूल दूसरी बार नहीं होगी।
5. दूसरों की आलोचना करने या सुनने में समय का अपव्यय मत करो।
6. किसी भी बात को पचाने की क्षमता का विकास करो।
7. व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के व्यामोह में न फंसकर जन-जन में संघीय भावना भरने का प्रयास करो।

❑ एकता के लिए आवश्यक है कि आचार-विचार समान हो। विचार-भेद हो तो सर्वोपरि न्यायाधीश आचार्य होते हैं। आचार्य की बात तर्क से स्वीकार न हो तो श्रद्धा से स्वीकार करें। परंतु विचार-भेद को बढ़ावा न दें। संघ में दलबंदी न करें। दलबंदी करने वाला स्वयं तो पतित होता ही है, साथ ही साथ दूसरों को भी ले डूबता है। हमारा संघ गौरवशाली है। हमें अपनी मर्यादाओं का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

साधना दो प्रकार की होती है—वैयक्तिक और सामूहिक। वैयक्तिक साधना में कोई मर्यादा, नियम-उपनियम नहीं होते। किसको कहां रहना है? क्या करना? कोई बंधन नहीं, पर वैयक्तिक साधना के लिए अभी अवकाश नहीं है। अभी तो संघीय साधना का समय है। हां, यह हो सकता है कि साधक संघ में रहकर भी अकेला रहे। जैसा कि स्वामीजी ने कहा है—**गण में रहूं निरदाव अकेलो।**

प्रवचन पंडाल में एक ही व्यक्ति बैठने वाला हो तो कोई मर्यादा की अपेक्षा नहीं है, पर जहां हजारों व्यक्ति बैठने वाले हैं, वहां यदि मर्यादा नहीं होगी तो अव्यवस्था हो जाएगी। सामूहिक व्यवस्था में कुछ नियम होते हैं। तेरापंथ एक संगठन है। इसकी व्यवस्थाएं महत्त्वपूर्ण हैं। हमारा संघ पूर्णतया संगठित और व्यवस्थित है। इसमें मर्यादाहीन कोई रह नहीं सकता। स्वामीजी ने सुदृढ़ मर्यादाओं की नींव पर इस संघ को खड़ा किया। स्वामीजी ने न केवल साधु-साध्वियों को ही मर्यादाएं दीं अपितु श्रावक-श्राविकाओं को भी मर्यादाएं दीं। हमारा संघ सुदृढ़ संघ है। साधु-साध्वियों को भी ध्यान रखना चाहिए मर्यादाएं संघ की प्राण हैं। मर्यादाओं से मर्यादित संघ ही प्रतिदिन गति और प्रगति करता है।

❑ सभी साधु-साध्वियों को आत्म-धन की सुरक्षा का पूरा-पूरा खयाल रखना चाहिए। जहां धन होता है वहां चोर-डाकुओं से सावधान रहना पड़ता है। साधु-साध्वियों के पास संयम रूपी धन है। आलस्य, निद्रा रूपी लुटेरे उसे छीन सकते हैं। इसलिए साधु-साध्वियों को अपने संयम रूपी धन की सुरक्षा के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए।

❑ हमारा एक नेतृत्व है। हम एक डोर से बंधे हुए हैं। गण और गणी के प्रति न उतरती हुई बात कहनी चाहिए, न सुननी चाहिए। किसी में दोष दिखाई पड़े तो तत्काल उसे सावधान कर देना चाहिए। वह स्वीकार न करे तो आचार्य को निवेदन कर देना चाहिए। दूसरों के दोष चुन-चुन कर एकत्रित करना भी पाप है।

❑ यह शासन किसी व्यक्तिविशेष का नहीं है, हम सब का है। इसको सुरक्षित रखना, इसकी सार-संभाल रखना हम सब लोगों की समान जिम्मेदारी है। किसी के प्रति द्वेष रखना बुरा है तो राग रखना भी बुरा है। साधु-साध्वियों को राग और द्वेष दोनों से बचने का प्रयास करना चाहिए। हमारा आचार पक्ष सबल होना चाहिए। हम जितने आचारनिष्ठ होंगे, उतना ही स्वयं का कल्याण करेंगे तथा दूसरों के लिए भी प्रेरणास्रोत बनेंगे।

आचारवान व्यक्ति निरंतर विकास की ओर बढ़ता है। आचारहीन व्यक्ति का स्वत: ही पतन हो जाता है। मर्यादाएं हमारे धर्मसंघ की प्राण हैं। निष्ठा और पूरी जागरूकता के साथ उन मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। जिन मर्यादाओं को हमने स्वीकार किया है, उनके प्रति तनिक भी लापरवाही हमारे लिए उचित नहीं। साधु-साध्वियों को ही नहीं, श्रावक-श्राविकाओं को भी इस मामले में पूरी तरह सावधान रहना है।

❑ विचार स्वातंत्र्य को मैं बहुत महत्त्व देता हूं। हर व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक खुलकर अपनी बात रख सकता है किंतु उस विचारणा के पीछे हितैषणा होनी चाहिए। हमारा चिंतन, हमारा मनन संघ के विकास के लिए होना चाहिए। गण की अखंडता के लिए यह आवश्यक है कि लोग दलबंदी से बचें। संघ में भेद डालना अपने आप में भेद डालने के समान होगा। छल-कपट का व्यवहार संघीय जीवन में चल नहीं सकता। वंचनापूर्वक जीवन जीने वाला संघ में टिक नहीं सकता। जिनकी संघ में आस्था नहीं है, वे संघ के सदस्य कैसे हो सकते हैं, विनीत श्रावक-श्राविका वही है जो गण की उतरती हुई बात न करे, न सुने।

❑ स्वामीजी दूरद्रष्टा थे। उन्हें यह भलीभांति मालूम था कि बिना मर्यादाओं के संघ चल नहीं सकता। इसलिए उन्होंने जो मर्यादाएं बनाईं, वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। समयानुकूल हैं। संघ के साधु-साध्वियों के लिए यह परमावश्यक है कि वे अपनी मर्यादाओं को सदैव ध्यान में रखें। स्वामीजी का लेखपत्र तेरापंथ धर्मसंघ का मौलिक विधान है। ऐसे लेखपत्र के स्रष्टा सैकड़ों-हजारों वर्षों में ही जन्म लेते हैं। वे विरले होते हैं।

❑ समाज में साधु का अपना विशिष्ट स्थान होता है। भारतीय समाज में जो पूज्य भाव संतों के प्रति है, वह न विद्वानों के प्रति है, न किसी नेता के प्रति है और न धनकुबेरों के प्रति है। इसका कारण है–संतों का त्याग-भाव। भारतीय संस्कृति में त्याग का सर्वोपरि महत्त्व है। जिसने त्याग किया, वह पूज्य बन गया। सब कुछ छोड़कर भी लौकिक दृष्टि से हमें बहुत मिला है, पर हम इसमें उलझें नहीं। यदि हम इस बाह्य-पूजा, प्रतिष्ठा से चिपक गए तो हमारी साधना निरर्थक हो जाएगी।

❑ हमने साधना का पथ स्वीकार किया है। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति की हमें अखंड आराधना करनी है। इसके साथ-साथ संघीय मर्यादाओं का भी सम्यक पालन करना है। हम इस बात को भूलें नहीं कि ये मर्यादाएं हम पर थोपी नहीं गई हैं बल्कि हमारे द्वारा स्वेच्छा से स्वीकृत हैं। स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादाओं का पालन सहजता से होता है, बाध्यता से नहीं।

❑ साधु की हर चर्या विवेक से अनुबंधित होनी चाहिए। हम जो कुछ करें, वह अपनी आत्मसाधना के लिए करें, अपने विवेक से करें, किसी को दिखाने के लिए नहीं। आचार्य भिक्षु ने इस धर्मसंघ को मुख्य रूप से तीन बातें दीं–श्रद्धा, आचार और संघीय व्यवस्था। श्रद्धा है–राग-द्वेष से दूर रहना। यह धर्म है और राग-द्वेष में लिप्त रहना अधर्म है। संयमी जीवन ही श्रेष्ठ है। असंयमी के जीने की कामना करना राग है, मरने की कामना द्वेष है और संसार समुद्र से तरने की वांछा करना धर्म है। दूसरा तत्त्व है–आचार। हमारे आचार्यों ने जो आचार-पद्धति बताई है, उसका सम्यक अनुपालन आवश्यक है। आचार-निष्ठा साधना का आधार है। आचार-शून्य साधना प्राणविहीन शरीर के समान है। इसलिए आचार-विशुद्धि का महत्त्व है।

❑ आचार्य भिक्षु ने तत्कालीन संघों की अव्यवस्था को देखा और उसमें उभरती हुई उच्छृंखलता को परखा। उन्होंने अपने संघ को अव्यवस्था से बचाने के लिए अनेक मर्यादाएं बताईं। उनमें एक विशिष्ट मर्यादा है–सब साधु-साध्वियां एक आचार्य के नेतृत्व में रहें। इसी प्रकार एक मर्यादा है–कोई भी अपना शिष्य न बनाए। जहां संघ है, वहां आचार व विचार की एकरूपता आवश्यक है।

मैं यह सब कुछ बार-बार इसलिए कह रहा हूं कि हमारी युवापीढ़ी अपने संस्कारों को भुलाए नहीं। आज लोकतंत्र और एकतंत्र की बात बहुत सुनाई पड़ती है। हमारे यहां तो सब स्वतंत्र हैं। सब स्वयं के अनुशासन में बद्ध हैं। जहां एक व्यवस्था का प्रश्न है, वह तो रहेगी ही। व्यवस्था वहां नहीं होती, जहां या तो सब वीतराग बन गए हैं या सब के सब भ्रष्ट हो गए हैं।

❑ संघीय मर्यादाओं को जानना हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जैसे धर्म के नियमों को समझे बिना धर्माचरण संभव नहीं, वैसे ही संघीय मर्यादाओं के पालन बिना संघ-व्यवस्था सम्यक रूप से नहीं रह सकती। मर्यादा के प्रति उपेक्षा धर्माचरण में बाधा डालती है और व्यक्ति को दुर्बल बनाती है। दुर्बल को हर कोई चुनौती दे सकता है।

संघ में आंतरिक कठिनाइयों से मुकाबला करने की शक्ति होती है। व्यक्ति दुर्बल होता है तो संघ उसे ठीक कर लेता है। संघ-मुक्त अकेले व्यक्ति को कौन संभाले? इस दृष्टि से संघ का अपना बहुत बड़ा महत्त्व है।

❑ जो साधु संघ में रहते हुए संघ पर आक्षेप करते हैं या संघ के किसी सदस्य पर आक्षेप करते हैं, वे स्वयं ही बदनाम हो जाते हैं। ऐसे साधुओं का कभी-न-कभी अहित होने वाला है। एकता तब तक रहेगी, जब तक संघ में एकता रहेगी। कोई भी बात गण के संबंध में कही जाए तो विचारपूर्वक, चिंतनपूर्वक कही जाए। कोई भी साधु गण में है और गण की निंदा करता है, इधर-उधर गलत संवाद पहुंचाता है, दूसरे को गिराने का प्रयत्न करता है तो मानना चाहिए कि वह स्वयं का बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है।

❑ संघ के हर वफादार साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका का कर्तव्य है कि वह कोई भी बात गण के विपरीत होती देखे तो निश्चित ही हमारे पास पहुंचा दे। गुरु तक पहुंचा देने से वह हलका हो जाएगा, गण और गणी के प्रति उतरती बात कहना, विपरीत बात कहना शोभा की बात नहीं है।

विनीत वह होता है जो संघ के प्रति समर्पित है। समर्पण से बढ़कर शायद ही दूसरी कोई चीज हो। हमारे साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं को संघ की शोभा निरंतर बढ़ाते रहना है और सब प्रकार से सावधान भी रहना है।

❑ हम साधु हैं, इसलिए साधक हैं और श्रावक हैं तो भी साधक ही हैं। हमारा मंच साधकों का मंच है। चारों तीर्थ (साधु-साध्वियां, श्रावक-श्राविकाएं) साधक हैं। जिसमें साधना नहीं है, वह मात्र एक दर्शक हो सकता है। हमें अपनी साधना का प्रतिक्षण निरीक्षण करते रहना चाहिए कि वह किस प्रकार चल रही है। हमारी साधना में क्या कमी है और क्या विशेषताएं हैं? हम कहां तक पहुंचे हैं और कहां तक हमें पहुंचना है? इन सब बातों पर गंभीरतापूर्वक चिंतन करना चाहिए।

हम जिस संघ में रह रहे हैं, वह मर्यादाओं का संघ है। आस्थाओं का केंद्र है। ऐसे संघ में रहकर हमें उसकी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही सारे कार्य करने चाहिए। संघ की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हमारा कोई भी काम नहीं होना चाहिए।

जहां कहीं भी हमारे चिंतन से, हमारे विचारों से और हमारे शब्दों से संघ की अवहेलना होती है, वैसा काम हमें नहीं करना है। हमारे साधु, हमारी साध्वियां और हमारे श्रावक-श्राविकाएं सभी इस दिशा में सजग रहें। संघ हमारा है और हम संघ के हैं, यह भाव हमेशा बढ़ता रहे। ❑

हाजरी का अर्थ है नियमों की स्मृति

आचार्य महाप्रज्ञ

तेरापंथ धर्मसंघ में मर्यादापत्र का वाचन बहुत महत्त्वपूर्ण है। आचार्य तुलसी और हमारे अन्य आचार्यों ने मर्यादा, अनुशासन और व्यवस्था के संदर्भ में हमें जो अवदान दिए, उसकी बार-बार स्मृति करना बहुत आवश्यक है। ऐसा इसलिए कि आदमी में प्रमाद बहुत है। वह बार-बार भूल जाता है। खराब बात को चाहे कम भूले, अच्छी बात को जरूर भूल जाता है।

भूल और प्रमाद को रोकने के लिए आवश्यक है—अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। अनुप्रेक्षा इसलिए कि प्रेक्षा के द्वारा जो सत्य मिला, उसे कैसे आत्मसात किया जाए। कोरा सिद्धांत न रहे, वह जीवन का व्यवहार बन जाए। इसके लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग किया जाता है।

आदतों को बदलने के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग अचूक है। ध्यान से सत्य को देखने की दृष्टि तो मिल जाती है, किंतु परिवर्तन और बदलाव का प्रश्न उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। हम एक ही बात का बार-बार उच्चारण करते हैं, स्मृति करते हैं और मनन करते हैं, तो धीरे-धीरे वह पच जाती है, आत्मगत हो जाती है और परिवर्तन हो जाता है।

हाजरी का यह दिन एक प्रकार की अनुप्रेक्षा है। साधु-साध्वियों के बराबर ध्यान में रहे कि हमारी मर्यादा क्या है और हमें किनके आधार पर चलना है। मर्यादापत्र का पहला वाक्य है—**सर्व साधु-साध्वियां, पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति की अखंड आराधना करें।** यह साधु-साध्वियों के लिए आचार्य का निर्देश है। समितियां और गुप्तियां पांच महाव्रतों की साधना के लिए हैं। मन की गुप्ति, वाणी की गुप्ति और शरीर की गुप्ति—ये प्रवृत्तियां जीवन यात्रा को संचालित करने के लिए हैं, उठना-बैठना, चलना, बोलना आदि-आदि। मुनि का नियम है कि वह चलते समय बात नहीं करते। अच्छा तो गृहस्थ के लिए भी नहीं है। किंतु साधु के लिए तो चलते समय बात करने की स्पष्ट वर्जना है। चलने की असावधानी के कारण आज कितनी दुर्घटनाएं हो रही हैं। पैदल चलते समय तो विशेष सावधानी की जरूरत होती है। जब से तेज रफ्तार वाली कारों का चलन बढ़ा, सड़क दुर्घटनाओं में बहुत वृद्धि हो गई है। ज्यादातर दुर्घटनाएं ओवरटेक के समय होती हैं। आदमी में इतना धैर्य नहीं कि दो क्षण सब्र कर ले। तेज रफ्तार से वाहन चलाने का परिणाम भीषण दुर्घटना के रूप में सामने आता है।

इसके अतिरिक्त आज मोबाइल फोन के रूप में यह जो नया इन्स्ट्रूमेंट चलन में आया है, इसने भी दुर्घटनाओं में बहुत वृद्धि की है। वाहन चलाते समय मोबाइल फोन का इस्तेमाल करना खतरे से खाली नहीं होता। अगर ईर्या समिति पर ध्यान दिया जाए तो दुर्घटनाओं में बहुत अंतर आ सकता है। मुनि के लिए चलते समय बात करने का सर्वथा निषेध है।

दूसरी बात-सांवद्य भाषा न बोले–हमारी समस्त प्रवृत्तियों का आकलन किया जाए तो पता चलेगा कि हमारी सबसे ज्यादा प्रवृत्ति है बोलने की, खाने-पीने या चलने की नहीं। आदमी सामान्य रूप से दो या तीन बार खाता है। चलता है दिन भर में घर से ऑफिस और ऑफिस से घर या बाजार तक। किंतु दिन भर बोलने का काम कितना पड़ा, इसका हिसाब लगाएं तो आपको स्वयं आश्चर्य होगा। बोलने की यह प्रवृत्ति दिन भर और रात में जब तक सो नहीं जाते, तब तक चलती रहती है। जो बातचीत में ज्यादा रस लेते हैं, उनके बात करने की तो कोई सीमा ही नहीं है। समाज में ऐसे चिपकू लोग हैं जो मिल जाने पर आसानी से छोड़ेंगे नहीं।

यह भी सत्य है कि बात में जितना रस है, उतना रसगुल्ले में भी नहीं। कभी-कभी तो सोचता हूं कि इतनी क्या बातें हैं? किस मुद्दे पर बात की जा रही है जो समाप्त होने का नाम नहीं ले रही। वाणी का संयम यह है कि अनावश्यक न बोलें। सावद्य वचन न बोलें। ऐसा वचन न बोलें, जिससे कर्म का बंध हो।

तीसरी बात-एषणा–इस संदर्भ में कहा गया कि आहार-पानी पूरी जांच के बाद लें। भोजन के बिना शरीर नहीं चलता और मुनि के लिए रसोई बनती नहीं है, इसलिए आहार-पानी भिक्षा से लाते हैं। लेकिन भिक्षा में भी बहुत विवेक दिया गया है। भिक्षा को जैनधर्म में गोचरी कहा गया है। गोचरी यानी गोचर्या। गाय जैसे सब पौधों को समूल न खाकर सब पर मुंह मारती जाती है, वैसे ही मुनि भी आहार एक ही स्थान से न लेकर थोड़ा-थोड़ा कई स्थानों से लेता है। इससे गृहस्थ को कोई समस्या नहीं होती। उसे फिर से नहीं बनाना पड़ता। इसलिए भिक्षा भी दाता का अभिप्राय देखकर हठ-मनुहारपूर्वक ली जाए।

प्रतिलेखन करते समय बात न करें। प्रतिक्रमण करते समय भी बात न करें। दिन में एक बार या दो बार वस्त्र और रजोहरण आदि का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया जाता है, जिससे उसमें जीव-जंतुओं के छिपे होने की संभावना भी न रहे। आज बिजली और पानी की अधिकता के कारण छोटे जीवों की भरमार हो गई है, इसलिए प्रतिलेखन में विशेष सावधानी की अपेक्षा रहती है। साफ-सफाई की दृष्टि से प्रतिलेखन का विशेष महत्त्व है और इस संदर्भ में मुनि को जागरूक रहना चाहिए। प्रतिलेखन से ही मिलता-जुलता शब्द है–प्रमार्जन। बैठते समय भूमि का प्रमार्जन करना चाहिए। प्रमार्जन से धूल और परमाणुओं की सफाई हो जाती है। धूल हट जाती है, यह तो स्थूल बात है। सूक्ष्म बात यह है कि जहां साधु बैठा है, वहां साध्वी को बैठना है तो अंतर्मुहूर्त का अंतराल रहना चाहिए। पुरुष जहां बैठा है, उसके परमाणु वहां मौजूद हैं और इसका प्रभाव साध्वी पर पड़ सकता है। इसी तरह जहां साध्वी या स्त्री बैठी हो, वहां साधु को बैठना है तो समय का अंतराल देना जरूरी है। यह बहुत सूक्ष्म विज्ञान है। इसलिए प्रतिलेखन और प्रमार्जन एक प्रकार से साधु-साध्वियों के लिए अनिवार्य किया गया है।

प्रतिक्रमण तो एक तरह से ध्यान का प्रयोग है। सामायिक और प्रतिक्रमण इन दोनों को ध्यान से अलग कर देखा नहीं जा सकता। दोनों में ही ध्यान से जुड़ी हुई क्रियाएं हैं। इसलिए इन दोनों क्रियाओं में दत्तचित्तता रहनी चाहिए। ध्यान कोई कर सके या नहीं, स्वाध्याय भी कोई करे या नहीं, लेकिन प्रतिक्रमण को जो ध्यान और स्वाध्याय की क्रिया मानते हैं, वे एक तरह से ध्यान, स्वाध्याय भी कर लेते हैं।

साधना की अपनी मुद्रा होती है। स्तुति करने की, नमाज अदा करने की, आरती करने की अलग-अलग मुद्राएं होती हैं। इसी तरह प्रतिक्रमण की भी निश्चित मुद्रा है। यह कोई रूटीन वर्क नहीं है कि जैसे-तैसे संपन्न कर लिया। प्रतिक्रमण उकड़ू आसन में किया जाता है। कठिन थोड़ा जरूर है, किंतु विधान में है और प्रतिक्रमण इसी आसन में किया जाना चाहिए। महावीर के समय में साधु उनसे कुछ पूछने के लिए आते तो उकड़ू आसन में बैठकर ही पूछते। प्रतिक्रमण के समय दीवार का सहारा तो लिया ही नहीं जाना चाहिए। अगर ऐसा करते हैं तो

यही समझा जाएगा कि प्रतिक्रमण को फर्ज अदायगी के तौर पर कर रहे हैं, साधना की दृष्टि से नहीं कर रहे हैं। मंत्री मुनि और पुराने साधुओं को देखा। अवस्था सत्तर वर्ष के ऊपर, किंतु भींत का सहारा लेकर कभी प्रतिक्रमण नहीं करते। एक बार आचार्यश्री ने उनसे कहा भी कि अवस्था आ गई। प्रतिक्रमण करते समय आपको कठिनाई होती होगी, इसलिए दीवार का सहारा आप ले सकते हैं। उस समय मंत्री मुनि मगनलालजी ने जो उत्तर दिया, वह सबके लिए एक बोधपाठ है। उन्होंने कहा—आचार्यश्री! एक आपका सहारा ले लिया। अब हमें किसी और सहारे की जरूरत नहीं है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि आसन को हम कभी गौण न करें। ध्यान के लिए तो यह एक प्रकार से अनिवार्य है। आसन के अनुरूप ही भाव निर्मित होते हैं। प्रसन्न मुद्रा, शोकाकुल मुद्रा, चिंतन की मुद्रा, सावधानी की मुद्रा आदि अलग-अलग मुद्राएं हैं और वे उसी अनुरूप भाव पैदा करती हैं। इसलिए मुद्रा को कभी गौण नहीं किया जाना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि अनायास ही मन में बुरी कल्पना, बुरे विचार आते हैं। ऐसे लोगों के लिए परामर्श है कि वे आसन को बदल दें, फिर देखें। आसन बदलते ही भाव भी बदल जाएंगे।

आचार्यश्री तुलसी ने प्रतिक्रमण की विधि निश्चित की थी। उन्होंने एक व्यवस्थित क्रम देते हुए कहा कि जो समर्थ और सक्षम हैं, वे साधु चर्या को जैसा विधान है, वैसा ही संपन्न करें। जिस क्रिया में जो मुद्रा या आसन निश्चित हैं, उन्हें उसी तरह संपन्न करें। मद्रास प्रवास में आचार्यश्री वहां के प्रमुख चर्च में ठहरे। वहां चर्च में प्रार्थना का दृश्य देखा। शाम को प्रतिक्रमण और अर्हत वंदना के समय मुख्य पादरी और दूसरे पादरियों ने उस दृश्य को देखा तो बहुत प्रभावित हुए। एक साथ लयपूर्वक उच्चारण और ध्यान की मुद्राएं उन्हें बहुत अच्छी लगीं और उन्होंने आचार्यश्री के सामने इसकी प्रशंसा भी की। इसी तरह मुसलमान मौलवियों ने प्रतिक्रमण को देखकर कहा कि आपका प्रतिक्रमण हमारी नमाज से बहुत मिलता-जुलता है।

हमारे साधु-साध्वियां इस बात पर ध्यान दें कि प्रतिक्रमण एक बहुत बड़ी साधना है। बहुत बड़ा प्रयोग है। कायोत्सर्ग भी इसी के साथ जुड़ा हुआ है। ध्यान के लगभग सारे प्रयोग प्रतिक्रमण में आते हैं। इसके प्रति जागरूकता कुछ कम हो रही है, इसलिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि प्रतिक्रमण विधिवत हो।

आचार्य भिक्षु ने सम्यक श्रद्धा और आचार की प्ररूपणा की। उन्होंने धर्म के बारे में बहुत स्पष्ट दृष्टिकोण दिया। कहा—त्याग धर्म, भोग अधर्म। धर्म और अधर्म की इससे सरल परिभाषा और क्या होगी। जितना-जितना त्याग, उतना-उतना धर्म और जितना-जितना भोग, उतना-उतना लौकिक कार्य। लौकिक कार्य को धर्म के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। इसी तरह व्रत धर्म, अव्रत अधर्म। आज्ञा धर्म, अनाज्ञा अधर्म—ये सारी परिभाषाएं धर्म की सरल परिभाषाएं हैं, जो किसी भी तरह से उलझन में डालने वाली बात नहीं है। बहुत साफ शब्दों में कहा—'असंयती के जीने की इच्छा करना राग और मरने की वांछा करना द्वेष।' जीने-मरने का चक्र बहुत जटिल होता है। असंयमपूर्वक जीना-मरना दोनों ही धर्म की कोटि में नहीं आता। संयमपूर्वक जीना-मरना वीतराग का धर्म है। इस तरह श्रद्धा और आचार के बारे में आचार्य भिक्षु ने एक स्पष्ट दृष्टिकोण हमारे सामने रखा।

साधु बनते ही कोई वीतराग नहीं हो जाता। कुछ क्षण पहले तो गृहस्थ वेश में राग-द्वेष युक्त था और कुछ क्षण बाद दीक्षा लेते ही वह वीतराग कैसे बन सकता है? वीतरागता आती है साधना के द्वारा। साधु बनने का मतलब इतना ही है कि साधना करने का लक्ष्य बना लिया। साधना के मार्ग पर कदम रख दिया। जब संकल्प को पका लिया जाए तो वीतरागता की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन पकने की क्रिया इतनी जल्दी नहीं होती। एक फल को पकने में भी समय लगता है। अगर कच्चे फल को डाली से तोड़कर जबरदस्ती जल्दी पकाने का प्रयत्न किया जाए तो उसका स्वाद मीठा नहीं होगा। हो सकता है कि वह पकने की बजाए सड़ जाए। डाली पर पके फल में

जो स्वाद होता है, वह कृत्रिम रूप से पकाए गए फल में नहीं होता। साधना में भी यही बात लागू होती है। साधना कृत्रिम रूप से परिपक्व नहीं की जा सकती।

साधना को पकाने के लिए जरूरी है—अनुशासन, मर्यादा और व्यवस्था। साधना में गलतियों और भूलों की बहुत संभावना रहती है। अनुशासन नहीं, वर्जना नहीं, निषेध नहीं तो फिर वहां साधना नहीं, उच्छृंखलता होगी। इस बात का अनुभव कर आचार्य भिक्षु ने कुछ मर्यादाओं का विधान किया। इसके जो उद्देश्य बतलाए, उन पर ध्यान दें—न्याय, संविभाग, समभाव, पारस्परिक प्रेम, कलह- निवारण, संघ की सुव्यवस्था—इन छह उद्देश्यों के साथ आचार्य भिक्षु ने अनेक प्रकार की मर्यादा दीं। उनमें कुछ मर्यादाएं सामयिक हैं और कुछ मौलिक हैं। सामयिक मर्यादाओं में तो देश-काल के अनुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है किंतु मौलिक मर्यादाएं एक प्रकार से अपरिवर्तनीय होती हैं, सार्वकालिक होती हैं। मौलिक मर्यादाओं में एक है—**सर्व साधु-साध्वियां एक आचार्य की आज्ञा में रहें।**

संगठन की सुदृढ़ता और अनुशासन के लिए एक नेतृत्व बहुत जरूरी है। इस संदर्भ में दर्शन की एक बात का उल्लेख करूं। ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने में मतभेद है। जैनदर्शन में ईश्वर को कर्ता नहीं माना गया है। वैदिक, नैयायिक आदि दर्शन ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानते हैं। तब प्रश्न उठा—ईश्वर एक क्यों? इसके उत्तर में कहा गया कि ईश्वर दो होते तो सृष्टि का क्रम मतभेद के कारण बिगड़ जाता। इसलिए ईश्वर का एक होना जरूरी है। व्यवहार में मैं मानता हूं कि एक नेतृत्व होना जरूरी है। नेतृत्व दो जगह से होगा तो समस्या पैदा हो जाएगी।

दूसरी मर्यादा है—**विहार चातुर्मास आदि आचार्य की आज्ञा से करें।** तीसरी मर्यादा है—**अपना-अपना शिष्य-शिष्या न बनाएं।** हमारे धर्म में सब साधु-साध्वियां एक गुरु के शिष्य हैं। आपस में सब गुरुभाई हैं। शिष्य का कोई शिष्य नहीं है। आज का समय महत्त्वाकांक्षा का है। कोई साधु विद्वान है, वह अपने चार-छह शिष्य बनाता है और फिर स्वयं को आचार्य घोषित कर देता है। आचार्य भिक्षु ने इस परंपरा की खामियों को देखा और विधान कर दिया कि कोई अपना शिष्य-शिष्या नहीं बनाएगा। सब एक आचार्य के शिष्य रहेंगे।

चौथी मौलिक मर्यादा—**आचार्य योग्य व्यक्ति को दीक्षित करें।** दीक्षा देने का एकमात्र अधिकार आचार्य को है। पूरी कसौटी के बाद दीक्षा दें। इसी के आधार पर हमारे यहां पारमार्थिक शिक्षण संस्था में मुमुक्षु बहन-भाइयों की शिक्षा की व्यवस्था की गई। वहां अध्ययन के दौरान भी अनेक तरह की कसौटियां होती हैं। कभी-कभी तो पांच-सात वर्ष बाद अध्ययनरत मुमुक्षु की दीक्षा होती है। अभिभावक लिखित और मौखिक आज्ञा दें, तब कहीं जाकर तेरापंथ के आचार्य दीक्षा प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में एक और विधान है कि दीक्षित करने के बाद भी कोई अयोग्य निकले तो आचार्य उसे गण से अलग कर दें।

पांचवीं और अंतिम मर्यादा है—**आचार्य अपने गुरुभाई या शिष्य को अपना उत्तराधिकारी चुनें तो उसे सब साधु-साध्वियां सहर्ष स्वीकार करें।** सबसे जटिल प्रश्न है उत्तराधिकारी के चयन का। संघों में विघटन और बिखराव का सबसे बड़ा कारण बनता है यह मुद्दा। तेरापंथ में यह मर्यादा और विधान है कि आचार्य को अधिकार है अपना उत्तराधिकारी चुनने का।

इस चुनाव में न आचार्य साधुओं से परामर्श लेते हैं, न साध्वियों से और न श्रावक-श्राविकाओं से। आचार्य स्वयं के विवेक, मेधा और बुद्धि का उपयोग करते हुए अपनी इच्छानुसार अपने उत्तराधिकारी का चयन करते हैं। पंचायत और हस्तक्षेप का तो कोई प्रश्न ही नहीं। इसी का परिणाम है कि हमारा संगठन मजबूत है। एक नेतृत्व की परंपरा बराबर चलती आ रही है।

सब साधु-साध्वियां इन मौलिक और सामयिक मर्यादाओं के प्रति जागरूक रहें। सब साधु-साध्वियां आचार, मर्यादा, आचार्य, गण और धर्म की सम्यक आराधना करें और धर्म शासन की गौरव वृद्धि करें। ❑

मेरं सम्मं पालइस्सामि

मुनि संबोध कुमार

सपनों का शामियाना ओढ़े जीवन ...रेंगती पगडंडियों पर चाहे कितने ही गहरे निशान क्यूं न छोड़ आये....वक्त की धूल-धूसरित आंधियां उन पर इतनी परतें गिरा देती हैं कि सदियों की तलाश के बाद भी वो निशान दिखाई नहीं देते। सपनों की दुनिया से हकीकत का आसमान दूर इतना दूर होता है कि उसे छूने की कल्पना भी बेमानी हो जाती है।

आचार्य संत भिक्षु ने सपनों की दुनिया में करवटें बदलने के बजाय हकीकत की जमीन पर पांव जमाये और उन कदमों के निशान कभी भी कहीं भी किसी होड़ की दौड़ में शामिल नहीं हुए।

उनकी हर बात, हर विचार, हर निर्णय, हर एक कल्पना दूरदर्शी सूझ-बूझ के रस में घुली सी, सक्षम-समृद्ध भविष्य के मानदंडों से नपे-तुले, जिद-अल्हड़पन, पाखंड से परे,तय सांचे में ढले से थे, जिन पर किसी भी सीमा तक पहुंचकर सवालिया निशान लगाना किसी की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमताओं के दायरों से अनहद-दूर–कल भी था, आज भी है और आने वाले कल की देहरी पर भी होगा। संयम की वीणा पर संवेदना, संविभाग, संगठन, समर्पण, सक्षमता और समाज तंत्र के राग आचार्य भिक्षु की मत-वीणा ने कुछ इस तरह संजीदगी से पिरोये कि व्यामोह, शिथिलता, अनुशासनहीनता, पदलिप्सा, मनमानी के बेसुरे गीत तड़क-तड़क कर बिखर गये। बिखरे भी तो ऐसे कि फिर कभी स्वर बुन ही नहीं पाये।

भगवान महावीर के साधना पथ को आचार्य भिक्षु ने जैसे समझा, जाना-पहचाना अक्षरशः उसी को जीया और तेरापंथ की रूह में यूं घोल दिया जैसे आसमान की दहलीज पर दस्तक देने वाले सूरज की किरणों में सिंदूरी रंग। उन्होंने एक सच को बहुत करीब से देखा–महाव्रत साधना के मखमली पांच फूलों के मखमली पौधे मर्यादाओं के कांटों की सुरक्षा के बिना मुरझाने, कुम्हलाने, अपने अस्तित्व से जंग लड़ते हुए हारने लगते हैं और उस एक हार के बाद बाकी रह जाती है–कराह, लड़खड़ाहट, फिसलन।

तभी तो बाढ़ आने से पहले पाल बांधने की तर्ज पर मर्यादाओं की सीधी, सहज, सरल, समय से हाथ मिलाती, पर सक्षम रेखाएं खींचकर तेरापंथ को एक निश्‍िचत भविष्य के हाथों में सौंप दिया।

आचार्य भिक्षु की मर्यादाएं जिनकी नींव पर तेरापंथ धर्मसंघ लगातार 150 साल से मर्यादा-महोत्सव सरजता आ रहा है, जो एक तरफ संगठन की नींव को फौलादी बनाती है तो दूसरी ओर साधना के फर्श पर चलते हुए फिसलन और विचलन की संभावनाओं को ताश के पत्तों के महल की तरह तहस-नहस कर देती हैं।

दोष देखे किण ही साध में तो कह देणो तिण ने एकंत, सगला रे साधु न साध्वी ने रहणो एक आचार्य री आगन्या माही, विहार, चौमासों आचार्य री आगन्या स्यूं करणो, आप-आप रां चेला नहीं बणावणा–ये वो लकीरें हैं जो एक कोरे कागज पर आचार्य भिक्षु की नन्हीं, पर मजबूत अंगुलियों के बीच थमी कलम से खिंचकर तेरापंथ के कल को उजालों की कायनात में सांस लेने का अधिकार दे दिया और दे दिये हर बदलते हुए क्षण को विकास के ऊंचे, सबसे ऊंचे क्षितिज।

वहीं **साधु-साध्विगण में भेद न डाले और दलबंदी न करें। जो गण के साधु-साध्वी में साधुपन सरधे, अपने आप में साधुपन सरधे वह गण में रहे, छल-कपटपूर्वक गण में न रहे। किसी साधु-साध्वी को लेकर ओछी जबान न कहे। आपस में मन-मुटाव हो वैसा शब्द न बोले। एक-दूसरे में संदेह उत्पन्न न करें**–ऐसी मर्यादाएं सरजकर साधना, संयम और संतता के प्रति निष्ठा पैदा करने की मुहिम छेड़ी। तेरापंथ संघ की रचनाधर्मिता की वजह अगर कुछ है , तो सिर्फ यही है।

समय करवटें बदलता रहा और तेरापंथ करवट बदलते समय का हाथ थामे ऊंची उड़ान भरकर सारी दुनिया का सिरमौर बन गया।

साहू होज्जामि तारिओ। असंविभागी न हतस्स-मोक्खो–इन सार्थ सूत्रों को अपने तन-बदन में, अपनी आत्मा में तेरापंथ ने कुछ यूं बसाया, कुछ यूं घोला कि स्वार्थ, खुदगरजी का पारा पिघल-पिघल कर रिस गया और ढाई सदी बाद भी व्यवस्थाएं विद्वत्ता और पद को नहीं, बल्कि निष्ठा और प्रतिष्ठा को समर्पित हैं।

सवाल आहार-पानी का हो या आवास और वस्त्रों का–सबके लिए एक ही सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय जवाब होता है–संविभाग। न कहीं किसी के साथ पक्षपात और न कहीं किसी के साथ वाद-विवाद, न हेराफेरी, न टालमटोली, सबके अधरों पर एक ही स्वर–

आणं शरणं गच्छामि,
मेरं शरणं गच्छामि,
आयरियं शरणं गच्छामि,
गणं शरणं गच्छामि,
धम्मं शरणं गच्छामि।

आचार्य की आज्ञा, गण की मर्यादा ही धर्म है, शरण है, त्राण है। पसंद हो या नापसंद, अनुकूल हो या प्रतिकूल–सिर आंखों पर था, है और रहेगा–हमेशा-हमेशा।

सियासत हो या समाज, संगठन वही चलता है, जो दिखता है। आचार्य भिक्षु की सोची-समझी, सूझ-बूझ की रोशनी में नहाई मर्यादायें, दिखने और पढ़ने में कद से बौनी क्यूं न लगे लेकिन शिथिलाचार, अनुशासनहीनता, लापरवाही, भगोड़ेपन जैसे शासन तंत्र की दीवारों को दीमक की तरह खोखली करने वाली शक्तियों को हाशिये पर लाकर गिरा देती हैं।

उस प्रबंधन को चरमराने में, टूटकर तार-तार होने में देर नहीं लगती जिसके अपने कोई उसूल न हो और उसूलों पर चलने की निष्ठा लावारिस हो गई हो। गणाधिपति तुलसी का कहा एक सच अब भी सीना ताने सम्मान से सिर उठाये खड़ा है–

तेरापंथ क्यों हो कभी प्रवाहपाती।

जब संस्कारों में मर्यादा निष्ठा रगों में खून के मानिंद दौड़ रही हो, जहां आगे बढ़ने वाले कदम पिछली सीढ़ियों को तोड़कर किसी और की उन्नति की चाह को मौत के मुहाने पर नहीं ले जाते, बल्कि हर पायदान को मिसाल बनाते हों, उसे प्रवाहपातिता का लिबास पहनाना मुश्किल से ज्यादा उतना ही असंभव है, जितना कि झुलसती हुई दोपहर में सूरज से आंख मिलाना।

यही तो.....यही तो है तेरापंथ का दुनिया से यूनिक होने का राज। हजारों नहीं, लाखों जद्दोजेहद भी कोई क्यूं न करे, मगर इस निष्ठा का अब तक कहीं साया तक दिखाई नहीं देता, फिर क्यूं न कहें हम शान से यह कि **मेरं सम्मं पालइस्सामि।** ❑

साधना का अभिनव प्रयोग है तेरापंथ

साध्वी कनकश्री

जगत परिवर्तनशील है। धरती पर जब कोई विशेष परिवर्तन घटित होता है, उसकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई क्रांतिकारी घटनाएं अवश्य रहती हैं। सूर्य में होने वाले बड़े विस्फोट भी पृथ्वी पर होने वाले परिवर्तनों का निमित्त बनते हैं। सामूहिक और मौलिक परिवर्तन के लिए समग्र क्रांति की अपेक्षा होती है। विश्व को जब कभी आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक क्रांति की अपेक्षा हुई, एक साथ अनेक समर्थ व्यक्तित्व उभरे। उनके क्रांत चिंतन ने आस-पास के वातावरण को प्रभावित किया। लोक चेतना को आकर्षित किया। इससे युगीन मूल्यों, लोकधारणाओं एवं परंपराओं में असामान्य बदलाव आया।

ईसा पूर्व पांचवीं-छठी सदी के भारत में एक ही मगध प्रदेश की धरती पर महावीर व बुद्ध के अतिरिक्त पांच अन्य धर्मनायक अपने उपदेशों एवं आध्यात्मिक अनुभवों से जन-जीवन को अनुप्राणित कर रहे थे। उनके तत्त्व दर्शन से समूचा भारतवर्ष लाभान्वित हो रहा था। उस समय विदेशों में भी अनेक संत-पैगंबर विभिन्न विचार क्रांतियों का नेतृत्व कर रहे थे। उनमें प्रमुख थे चीन के लाओत्से और कंफ्यूशियस, यूनान के पाइथोगोरस, ईरान में पारसी धर्म के पैगंबर जरथ्रुस्ट तथा फिलिस्तीन के पैगंबर जिरेमिया और रजकिल।

महावीर कालीन उस क्रांत इतिहास की एक बार पुनः आवृत्ति हुई थी ईसा की अठारहवीं सदी में। वह युग भी धार्मिक उत्क्रांति की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वह धार्मिक और सामाजिक नव जागरण का समय था। उस समय एक ओर जहां स्वामी दयानंद सरस्वती वैदिक परंपरा में नवीन उत्क्रांति का उद्घोष कर रहे थे, राजा राममोहन राय और स्वामी विवेकानंद जर्जरित हिंदू समाज में नई चेतना का संचार कर रहे थे, रामस्नेही संप्रदाय के प्रणेता स्वामी रामचरणजी निवृत्ति मार्ग का शंखनाद कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर जैन परंपरा के आध्यात्मिक क्षितिज पर भी एक ऐसा व्यक्तित्व उभरा जिसने रूढ़िवादी विचारधारा से जकड़े धार्मिक समाज को एक नया मोड़ दिया। धर्म को क्रियाकांडों एवं धर्मस्थलों से बाहर निकालकर उसे जीवनगत बनाने के सूत्र दिये। धर्मगुरुओं की जागीरदारी को समाप्त किया।

धर्मस्थानों पर संतों के स्वामित्व और व्यामोह के विरुद्ध बगावत की। शिष्य प्रथा की मजबूत जड़ों को झकझोरा। लोक चेतना को अध्यात्म और व्यवहार की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं की सम्यक जानकारी दी। लौकिक और पारलौकिक धर्म को प्रेयस् और श्रेयस् के रूप में

विश्लेषित कर सामाजिक दायित्व और मोक्ष मार्ग को अलग-अलग संदर्भों में परिभाषित किया। दान और दया के नाम पर चलने वाले धार्मिक विभ्रम को समाप्त कर मानवीय समानता के सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। वे क्रांतद्रष्टा मनीषी थे–तेरापंथ धर्मसंघ के आद्यप्रणेता आचार्यश्री भिक्षु जो अपने युग में 'संत भीखणजी' के नाम से पहचाने जाते थे।

धर्म क्रांति के सूत्रधार आचार्य भिक्षु के साथ भी प्रारंभ में वही घटित हुआ जो सामान्यतः हर क्रांतिकारी के साथ घटित होता है। जैसा कि मार्टिन लूथर, ईसा मसीह, सुकरात, गांधी आदि के साथ घटित हुआ था। जीवन और जगत के नये मूल्यों को उद्घाटित करने वाले हर महापुरुष को अपने जीवन काल में समाज के निर्मम व्यवहारों का शिकार होना पड़ा है। उनका अंकन जमाना सदियों बाद ही करता है।

आचार्यश्री भिक्षु ने धार्मिक मान्यताओं के क्षेत्र में नया चिंतन दिया, नयी स्थापना की, उसे समाज पचा नहीं पाया। फलस्वरूप भिक्षु को धर्मद्रोही करार दिया गया। उनके क्रांत चिंतन को स्वीकृति और समर्थन तो दूर, सुनाने तक से बहिष्कृत कर दिया जाता था। लेकिन क्रांति की लहर कब रुकती है इन अवरोधों के सामने?

आचार्य भिक्षु को प्रवास के लिए स्थान नहीं मिला तो उन्होंने अपने क्रांति के साथियों के संग श्मशान में डेरा डाल दिया। 'अंधेरी ओरी' जैसे भयावह स्थान में चातुर्मासिक प्रवास कर अभय, अहिंसा और मैत्री भावना का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। पर्याप्त भोजन पानी नहीं मिला तो तपोयोग और आतापना के आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए अपने आप को समर्पित कर दिया।

एक वर्षायोग में आठ-आठ बार स्थान और शहर से निकाल दिये जाने को भी वरदान मानकर वे हंसते-मुसकराते रहे। गालियों की बौछार को अमृत की धार व मुष्टि प्रहार को सफलता के आसार मानकर वे निरंतर आगे बढ़ते रहे। उनका लक्ष्य था–सत्य की शोध और संयम की साधना।

धीरे-धीरे जनता ने उन्हें समझा, उनके तत्त्व दर्शन को समझा, भ्रांतियों के बादल छंटे, सत्य का सूरज प्रखरता से अपना आलोक फैलाने लगा। भिक्षु जिधर चले, हजारों पैर उस दिशा में गतिशील हो गये। उनके न चाहने पर भी एक धर्मसंघ का उदय हो गया, उसका नाम है–'तेरापंथ'।

आचार्य भिक्षु ने अनुभव किया और आगम की आंख से देखा कि सत्य की ज्योति मिथ्या दृष्टिकोण और आचारहीनता की राख से दबी हुई है। उन्होंने यथार्थ को प्रस्तुति दी। एक धर्मक्रांति घटित हुई। आचार्यश्री भिक्षु ने भगवान महावीर की वाणी एवं उनके द्वारा निर्दिष्ट सम्यक आचार और विचार के प्रति सर्वात्मना समर्पित होकर वि. सं. 1817 आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को केलवा (राजस्थान) का जैन मंदिर, जो अंधेरी ओरी के नाम से प्रसिद्ध था, के प्रांगण में वट-वृक्ष के नीचे, -भाव दीक्षा–शुद्ध साधुत्व को स्वीकार किया था। यह स्वयं को संयम मार्ग में स्थापित करना ही तेरापंथ धर्म संघ की स्थापना का आधार बन गया।

प्रारंभ में भिक्षु के विचारों के सहयात्री तेरह मुनि थे, गृहस्थ अनुयायियों की संख्या भी तेरह थी। मारवाड़ी भाषा में तेरह को 'तेरा' कहते हैं। किसी व्यक्ति ने तुकबंदी कर दी कि ये 'तेरापंथी' हैं। आचार्य भिक्षु ने इस शब्द को यथावत स्वीकार करते हुए नये सिरे से परिभाषित किया। उन्होंने प्रभु महावीर को वंदना करते हुए कहा–**हे प्रभो! यह तेरापंथ, मानव-मानव का यह पंथ**–हम तो इस पथ के पथिक हैं। दूसरे नय से व्याख्या करते हुए उन्होंने संख्या वाचक शब्द को भी स्वीकार किया और कहा–

भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति–साधु आचार की इन तेरह धाराओं का जो पालन करता है, वह तेरापंथी है।

वस्तुतः जैन परंपरा का नवीनतम संस्करण है–'तेरापंथ'। यह अध्यात्म साधना का, अहं विसर्जन और ममत्व विसर्जन का एक अभिनव प्रयोग है। अहंकार

मर्यादा का गीत

साध्वी कान्तयशा

मर्यादा असंदीन द्वीप है।
मर्यादा आचार का निर्मल झरना है।
मर्यादा पतवार है जो आकांक्षाओं के
समंदर पार ले जाती है।
मर्यादा उच्छृंखलता पर
लगाने वाला अंकुश है।
मर्यादा मन रूपी घोड़े की लगाम को
वशीकरण का मंत्र है।
मर्यादा संयममय जीवनशैली है।
मर्यादा विनम्रता और सहिष्णुता का
सुदृढ़ सुरक्षा कवच है।
मर्यादा वह मशाल है जो जिंदगी को
रोशनी से जगमगा देती है।
मर्यादा वह उष्मा है जो शीतकाल की
ठंडी बयार को सह लेती है।
मर्यादा समय प्रबंधन की दस्तक है।
मर्यादा चेतना का जागरण है
मर्यादा महत्त्वाकांक्षाओं का ठहराव है ।
मर्यादा उत्तरोत्तर विकास की प्रेरणा है।
मर्यादा एक गुरु, एक आचार
और एक विचार की विशुद्ध प्रणाली है।
मर्यादा हिमालय-सी अडोल,
सागर सी गंभीर, पूर्णिमा सी उज्ज्वल,
सूर्य सी दीप्तिमान व गंगा-सी निर्मल है।
वह आत्मसंयम का द्वीप है, शरण है,
प्रतिष्ठा है, गति है, विकास है, विश्वास है
और जीने का प्राणवान आश्वास है!

और ममकार—ये दोनों साधना की विकट बाधाएं हैं। आचार्य भिक्षु ने उन बाधाओं का निराकरण किया। संघ में एक नेतृत्व की व्यवस्था दी। शिष्य प्रथा और पद की उम्मीदवारी को निरस्त किया।

तेरापंथ आचार-शुद्धि और विचार-शुद्धि की सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर स्थित है। एक आचार, एक आचार्य, एक चर्या, तत्त्व निरूपण की एक प्रणाली—यह तेरापंथ की निजी पहचान है। तेरापंथ एक उदारवादी और शक्तिशाली धर्मसंघ है। इसकी शक्ति के स्रोत हैं—अनुशासन, व्यवस्था, संगठन, सत्यनिष्ठा, अहंकार और ममकार का विसर्जन एवं प्रयोगधर्मिता।

शक्ति जागरण के मूल मंत्र है—संयम और आत्मानुशासन। तेरापंथ—इन दोनों से संपन्न है। शक्ति-संपन्नता के कारण ही युग-चेतना को इससे बहुत-बहुत अपेक्षाएं हैं। अपने असांप्रदायिक और व्यापक कार्यक्रमों के द्वारा तेरापंथ धर्मसंघ इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सतत प्रयत्नशील है।

आचार्यश्री भिक्षु ने तेरापंथ धर्मसंघ के अस्तित्व को आधारशिला दी, चतुर्थ अधिशास्ता जयाचार्य ने उसे ऊंचाइयां प्रदान कीं, गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ ने संघ को बहुआयामी विस्तार दिया और युगप्रधान आचार्यश्री महाश्रमण ने अपनी ऋतंभरा प्रज्ञा से प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, अणुव्रत दर्शन और अहिंसा समवाय के व्यापक अवदानों द्वारा राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का स्थायी समाधान प्रस्तुत किया।

वर्तमान में महातपस्वी, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमणजी अपने कुशल नेतृत्व से संघ को अपनी तपस्विता और तेजस्विता से महिमा मंडित कर रहे हैं। तटस्थ दृष्टि से देखा जाये तो तेरापंथ का विचार दर्शन, उसका इतिहास और असांप्रदायिक स्वरूप पठनीय है, मननीय है, अनुकरणीय है और अभिवंदनीय है। ❑

तेरापंथ का संविधान सुरक्षा की सीमाएं

डॉ. शांता जैन

जैन परंपरा में एक आम्नाय का नाम है तेरापंथ धर्मसंघ। जिसकी पहली पहचान है–'एक गुरु और एक विधान'। जिसका आचार पक्ष है पंच महाव्रतों की अखंड आराधना और व्यवहार पक्ष है आचार्य भिक्षु द्वारा लिखित संघीय मर्यादाओं की अनुपालना।

तेरापंथ धर्म-संघ एकतंत्र और प्रजातंत्र का समन्वय है। यहां स्वतंत्रता और अनुशासन एक सिक्के के दो पहलू हैं। आत्म विकास के क्षेत्र में साधक स्वतंत्र है, पर आत्म-नियंत्रण का निदेशक सूत्र आचार्य की सर्वोपरि आज्ञा है। तेरापंथ का वाच्यार्थ है–हे प्रभो! यह तेरा पंथ। आचार्य भिक्षु ने संपूर्ण जीवन को सत्य के नाम पर समर्पित कर दिया। प्रभु के पंथ पर चरणन्यास करते ही ममकार सिमट गया। आग्रह की पकड़ छूट गई। राग-द्वेष के संस्कारों को विराम मिल गया। संवर और निर्जरा उनका मुख्य उद्देश्य बन गया। 'एकला चलो रे' का आदर्श उसकी पहचान बन गया।

आचार्य भिक्षु एक ऐसा व्यक्तित्व था, जिसने अपना जितना स्व का सीमाकरण करना चाहा उतना ही विस्तार होता गया, क्योंकि लोगों ने उन्हें समझा। सत्यशोधक, तत्त्वगवेषी, ऋजुधर्मी मानकर उन्हें सम्मान दिया। जहां सत्य, अहिंसा, अनेकांत, अनाग्रह, अभय और आर्जव होता है वहां लोग स्वयं साथी बन जाते हैं। वे अकेले चले थे, पर उनके साथ कारवां बनता चला गया।

आचार्य भिक्षु आत्मगवेषी साधक थे। साधना और व्यवहार दोनों के संदर्भ में जिंदगी को उन्होंने परत-दर-परत समझा था। अनुभवों का काफिला उनके साथ था, इसलिए उद्देश्य और आदर्श के निर्णय में उन्हें सही दिशा, सही दृष्टि मिली। उन्होंने नहीं चाहा था कि मैं किसी संप्रदाय का निर्माण करूं, शिष्य संपदा बढ़ाऊं, प्रचार-प्रसार को गतिशीलता दूं, पर-कल्याणार्थ जीवन खपा दूं। उन्होंने सिर्फ सत्य की तलाश में 'स्व' को सामने रखा। कर्म निर्जरा का तप तपा, पर उस युग की नियति थी कि आचार्य भिक्षु का सफर भगवान महावीर के सिद्धांतों पर चलकर नए पदचिह्नों को बनाने के लिए शुरू हो गया। जब संप्रदाय का आध्यात्मिक नामकरण हुआ, शिष्यों की संख्या बढ़ी, साधना की सीमाओं ने विस्तार लिया, जनमत भी साथ होता गया तो एक समृद्ध एवं श्रद्धानिष्ठ श्रावक समाज का भी उदय हो गया। तब संगठन, सेवा, साधना और साधुत्व की सुरक्षा के लिए उन्होंने जो मर्यादाएं बनाई, वह आलेख आचार्य भिक्षु की साधनाकालीन अनुभूतियों का सच्चा प्रमाण-पत्र कहा जा सकता है।

यह मर्यादा-पत्र मात्र तेरह नियमों का संकलन या केवल कागज का टुकड़ा नहीं है, धर्म-संघ का प्राण है, साधुता का वसीयतनामा है, जिस पर उस समय के प्रत्येक साधु-साध्वी ने हस्ताक्षर किए हैं। आचार्य भिक्षु का लिखा यह छोटा-सा पत्र आज तेरापंथ की अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर बन गया है।

यह किसी राष्ट्र का संविधान नहीं, जिसे कानून जबरन स्वीकार करने के लिए व्यक्ति को विवश करे। यह धर्म का संवाहक सूत्र है, जिसे साधुता के नाम पर सहज श्रद्धा से सहमति मिली है।

यह वो अखंड विश्वास है, जो गुरु और शिष्य के बीच श्रद्धा और समर्पण को जोड़े रखता है। यह सत्य का वह आलेख है, जिसे आंख बंद कर भी स्वीकारा जाए तो व्यक्ति कहीं धोखा नहीं खा सकता। आचार्य भिक्षु ने मर्यादा पत्र के संदर्भ में अपने शिष्यों को कितना साफ-साफ कह दिया था–'मेरे बनाए गये नियम-उपनियम तुम्हारी समझ में आए, इन्हें उपयोगी समझो तो स्वीकार करना अन्यथा नहीं, पर स्वीकृति के बाद इन्हें गलत मत ठहराना, आलोचना मत करना अन्यथा साधुता की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा। अनंत सिद्धों की साक्षी में स्वीकृत यह संकल्प तुम्हारी साधना का सेतु है। इसे श्रद्धा और ईमानदारी के साथ स्वीकार करना।'

मर्यादा-पत्र में सबसे पहले एक गुरु की आज्ञा को सर्वोपरि माना है। भगवान ने कहा–'आज्ञा धर्म, अनाज्ञा अधर्म।' एक गुरु की अनुशासना में व्यक्ति की संपूर्ण आकांक्षाओं को अनुशासन मिल जाता है। जो गुरु की आज्ञा को मानकर जीते हैं, उनके जीवन का हर पल शुक्ल-पक्ष सा होता है। यह श्रद्धा और समर्पण की सर्वोत्कृष्ट साधना है, जहां शिष्य गुरु को सब कुछ सौंपकर निश्चिंत-निर्भार जीता है।

कहीं तर्क नहीं, आशंका नहीं, विरोध नहीं, विद्रोह नहीं। सचमुच! जिसकी चिंता खुद गुरु करें, वह शिष्य फिर अपनी चिंता का बोझ क्यों ढोए? एक गुरु की आज्ञा के इस विधान ने संघ को चैतन्यमय रखा। इस मर्यादा की धारा ने शिष्य संपदा को समृद्ध ही नहीं, संगठित, निष्ठाशील, अनुशासित एवं आस्थाशील बनाए रखा है। यही तेरापंथ संघ की दीर्घजीविता एवं प्रगतिशीलता का सच्चा सबूत है।

मर्यादा बनी **विहार चतुर्मास गुरु आज्ञा से करें।** बहुत कठिन साधना है जीवन की हर इच्छा को गुरु के हाथों में सौंप देना। साधु जहां रहता है, यदि अनुकूलता नहीं है श्रावकों की, परिवेश की, परिस्थिति की, सुख-सुविधाओं की तो भला वह प्रयास कितना सार्थक हो सकता है। मन संकल्प-विकल्पों से भर सकता है। मानवीय दुर्बलताएं सिर उठा सकती हैं–कल मैंने इतने बड़े शहर में प्रवास किया था, लोगों की भीड़ थी, प्रचार-प्रसार का स्वर ऊंचा था, प्रशंसा प्रशस्ति थी। आज एक छोटे से गांव में जहां साधु की भाषा भी लोग पूरी तरह नहीं समझते, उन निरक्षर लोगों के बीच रहना, सुविधाओं का अभाव झेलना, आकांक्षाओं का दमन करना–यह सब संभव है–तो साधुता और शिष्यत्व का कदम बौना पड़ जाता है।

साधु चाहे विद्वान हो या अनपढ़, प्रतिष्ठित हो या सामान्य, गुरु कहीं भी उन्हें भेज सकते हैं और शिष्य सहर्ष उस आदेश को गुरु का प्रसाद समझ स्वीकार कर लेते हैं। इस सूत्र के पीछे संभवतः आचार्य भिक्षु ने सोचा होगा–मनचाहे क्षेत्रों का चयन श्रावकों के साथ संबंधों को घनीभूत बनाएगा। गुटबंदी होगी। वैराग्य कमजोर पड़ेगा। अनुकूलता-प्रतिकूलता में सम रहने का अवसर भी नहीं मिलेगा।

फिर उच्च स्तरीय साधु तो पूजे जायेंगे, सामान्य साधु उपेक्षित हो जायेंगे जबकि साधु का कोई भी विशेषण वंदनीय नहीं होता, उसकी विशेषता ही वंदना पाती है। इसे आश्चर्य ही कहा जायेगा कि सदियों बाद भी इस प्रजातंत्रीय युग में तेरापंथ धर्म-संघ का साधु वहीं जाता है जहां गुरु भेजते हैं। वही करता है जिसके लिए गुरु आदेश देते हैं। किसी भी साधु को पहले क्षण तक ज्ञात नहीं होता कि अगला चतुर्मास उसका कहां होगा और जब आचार्य द्वारा निर्णय घोषित होता है तो बिना किसी तर्क, विरोध और ननुनच के उस दिशा में नई प्रेरणा के साथ कदम उठ जाते हैं। साधुता का एक लक्षण यह भी है कि वह जहां भी रहे, संयम में रमण करे। साधना को गति देता रहे।

आचार्य भिक्षु ने मनुष्य की मूल मनोवृत्ति को पकड़ा और संविधान में लिख दिया–'कोई साधु अपना शिष्य नहीं बनाएगा।' यदि सबमें गुरु बनने की आकांक्षा जाग जाए तो शिष्य बनाना भी धर्म नहीं, एक व्यवसाय बन जाए। शिष्यों की टोली बनाकर अलग खेमे में खड़े करना धर्म को बांटना है, क्योंकि जब श्रद्धालु लोगों के मन में धर्मोपासना गौण हो जाएगी, वैयक्तिक आकर्षण

मुख्य हो जाएगा। शिष्य बनाने का व्यामोह राजनीति का एक दूसरा चेहरा है। कोई सहज शिष्य न बने तो फिर उसे प्रलोभन दिया जाए, बहकाया जाए, झूठे सपने दिखाकर भ्रमित किया जाए अथवा पैसों से खरीदा जाए।

आचार्य भिक्षु ने इन महत्त्वाकांक्षाओं को लगाम देकर घुसपैठ करने वाली उन समस्त बुराइयों को रोक दिया, जिनके आने पर साधुत्व सिर्फ दिखावा बनकर रह जाता है। तेरापंथ की यह विशेषता आज भी अक्षुण्ण है कि दीक्षित होने वाला हर साधु एक ही गुरु के नाम पर दीक्षित होता है। कोई अपना शिष्य नहीं बनाता।

जिस संघ में साधु दीक्षित होता है, उस संघ के प्रति निष्ठा संयम का पहला नीति सूत्र है। गण और गणपति के प्रति पूर्ण विश्वस्त होकर ही वह अपने जीवन की बागडोर उनके हाथों में थमाते हैं, इसलिए साधु संघीय आस्था के साथ संघ के अनुशासन, मर्यादा और परंपरा को स्वीकृति देता है, उसका पालन करता है। मगर छल प्रवंचना के साथ एक पल भी संघ में नहीं ठहरता, क्योंकि छलना और साधना दोनों विपरीतगामी शक्तियां हैं।

संघीय सदस्यता की स्वीकृति कोई जबरदस्ती थोपी नहीं जाती। साधक अपनी निर्बाध पवित्र साधना का अखंड विश्वास लेकर प्रवेश करता है, इसलिए साधु स्वयं की साधना पर विश्वास करे और दूसरों की साधना पर भी विश्वास करे। दूसरों की साधना को भी शुद्ध दृष्टि से देखे, वंचनापूर्वक न रहे। यदि ऐसा करता है तो स्वयं सत्य के साथ वंचना करता है। स्वयं-स्वयं से छला जाता है। इसलिए आचार्य भिक्षु ने 'विश्वास' का एक साधना सूत्र देकर साधक को जीवन के सभी अवगुणों से बचा लिया।

आचार्य की आज्ञा और अनुशासन में वही व्यक्ति अपनी साधना को ऊंचाइयां दे सकेगा, जिसका जीवन श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास और कर्तव्य से भावित होगा। जो अपना विकास संघ-विकास समझेगा और संघ का विकास भी अपना विकास समझेगा। तेरापंथ का साधु संघीय भूमिका पर जीते हुए कभी ऐसा गलत काम नहीं करेगा जिसका परिणाम संघ को भुगतना पड़े। शुद्ध साधु न स्वयं कभी अपनी श्रद्धा को कमजोर पड़ने देता है, न वैचारिक वैमनस्य को जागने देता है, न मतभेद को अवकाश मिलता है और न कभी औरों को गलत कहकर, गलत दिशा देकर उसे अपने लक्ष्य से विचलित करता है और न सैद्धांतिक मान्यताओं के प्रति शंका उठाता है।

साधु-संघ के हर सदस्य को शुद्ध साधु मानता है जो गुरु आज्ञा में रहता है। भगवान द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चलता है। स्वीकृत मर्यादा, अनुशासन और संयम का आत्मसाक्षी से पालन करता है। जो कभी लक्ष्यरेखाओं का उल्लंघन नहीं करता। शिष्य वही बने और उसे ही बनाया जाए जिसमें दीक्षित होने की अर्हता हो। दीक्षा की पहली शर्त है—वैराग्य, नव तत्त्वों का ज्ञान, श्रद्धा और समर्पण की समझ, अनुशासन और संयम की अनुपालना का संकल्प एवं शक्ति सामर्थ्य।

मर्यादा-पत्र में दीक्षा-संस्कार से पहले मुमुक्षु के जीवन का परीक्षण करना भी जरूरी बतलाया है। आचार्य भिक्षु ने उन साधु और आचार्यों को सचेत किया, जो सिर्फ संख्यावृद्धि के लिए अथवा सांप्रदायिक मोह के कारण शिष्य-शिष्याओं को मुड़ाया करते थे। आपने अविवेकी को दीक्षा देकर साधुता का स्वांग रचने का कड़ा विरोध किया। वास्तव में अयोग्य दीक्षा कई दोषों को आमंत्रण है। अयोग्य का मन संसार में और शरीर साधुत्व में रहता है। आचार्य भिक्षु ने अंतिम संदेश में भी सबको सावधान किया कि **जिस-तिस को नहीं मूंड लेना। दीक्षा देने में पूरी सावधानी रखना।** अयोग्य दीक्षा पर किया गया यह प्रतिबंध संघ की अनुशासना को सुदृढ़ता दे गया। श्रद्धा और समर्पण के साथ आचार्य की अनुशासना में रहते हुए शिष्य न बीते कल का अफसोस करते हैं और न आने वाले कल की चिंता। ये 'आज' को आनंद से जीते हैं। गुरु आज्ञा उनका आत्मधर्म बन जाता है।

आचार्य पद की सबसे बड़ी कसौटी है उत्तराधिकारी की नियुक्ति। आचार्य भिक्षु ने आचार्य पद पर नियुक्ति की एक अनूठी परंपरा का विधान किया। आपने कहा—**आचार्य अपने गुरु भाई या शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करें तो गण के सभी साधु-साध्वियां उसे सहज स्वीकार करें। कोई पद का उम्मीदवार न बने।**

आचार्य स्वयं सर्वांगीण जांच परख के बाद किसी योग्य साधु को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं। संघ की विरासत को जिसे भी सौंपते हैं, निश्चित रूप से उनके हाथों में संघ का भविष्य सुरक्षित रहता है। इस प्रकार आचार्य भिक्षु ने सामुदायिक परिवेश में आचार्य की नियुक्ति को लेकर संभाव्य पदलिप्सा से उठने वाले ज्वार से बचने के लिए पहले ही पाल बांध दी। यही कारण है कि तेरापंथ धर्म-संघ में आचार्य पद के लिए कभी कोई विवाद खड़ा नहीं हुआ।

जहां बुद्धि और तर्क है वहां विचार भेद होना संभव है। मगर साधुता का एक लक्षण है—विचारभेद हो मगर विचार वैमनस्य पैदा न हो। **श्रद्धा या आचार का कोई नया विषय संघ में चर्चा का विषय बने, किसी की समझ में न आए तो आग्रही पकड़ न रखे। विरोध, आलोचना, निंदा न करे। उस विषय को बहुश्रुत साधुओं के पास जाकर समझे। आचार्य से समाधान ले। इसके बावजूद भी यदि समझ में न आए तो उसे केवलीगम्य कर दे। मगर एक बात को लेकर खींचातानी न करे। गण में मतभेद की दीवारें खड़ी न करे**—आचार्य भिक्षु का यह विधान गण की एकसूत्रता एवं बौद्धिक विनयशीलता का जीवंत उपाय बन गया।

- सत्य की कोई सीमा नहीं होती। उसे शब्दों में बांधा नहीं जा सकता। उसे समझने का दावा करना भी मात्र अहं है। अहं आग्रह बढ़ाता है, इसलिए भिक्षु ने कहा—'विचार स्वातंत्र्य का हनन भी मत करो और सैद्धांतिक मतभेदों को संघर्ष के कठघरे में खड़ा भी मत करो। संगठन की एकता, श्रद्धा की सघनता को बनाए रखो। उन्होंने इसे स्पष्टता दी—सामान्य साधु बहुश्रुत साधु से अपने प्रश्नों का समाधान ले, बहुश्रुत आचार्यों से समाधान पूछे, फिर भी प्रश्न अनुत्तरित रह जाए तो केवलीगम्य कर दे। उसे लेकर गण में विवाद की जड़ें गहरी न करे। साधु की जागरूकता हमेशा उन सीमाओं को सील किए रहती है।

संघीय चेतना से जुड़ा साधु छिद्रान्वेषण की मनोवृत्ति से सदा अनछुआ रहता है। आचार्य भिक्षु ने इसे साधु का एक गुण कहा और मर्यादा दी कि किसी में दोष देखो तो तत्काल उसे या आचार्य को बता दो, मगर प्रचार-प्रसार मत करो। दोषों को चुन-चुनकर इकट्ठा मत करो, क्योंकि भूल होना मानवीय स्वभाव है। भूल किसी से भी हो सकती है, चाहे बड़ा हो या छोटा। फर्क इतना सा है कि कोई भूल को भूल मानकर उसका परिष्कार करता है, आलोचना और प्रायश्चित्त करता है और कोई भूल के प्रति लापरवाह रहता है।

सामुदायिक परिवेश में कोई किसी से छिपकर नहीं जी सकता। किसी के द्वारा की गई छोटी-सी भी स्खलना किसी-न-किसी आंख की साक्षी बन जाती है। ऐसे समय के श्रेष्ठ साधु गलतियों को देखकर संबंधित साधु का ध्यान उस ओर खींचते हैं, मगर कुछ साधु ऐसे भी होते हैं, जो देखते नहीं, गलती चुगते हैं। फिर सबके बीच उसे बांटते हैं। इस मानसिकता पर आचार्य भिक्षु ने कड़ा प्रहार किया। उन्होंने स्पष्ट कहा-यह सुधार का रास्ता नहीं है। यदि तुम उसे खुद को कहने का साहस नहीं जुटा सकते तो आचार्य या बहुश्रुत साधु को निवेदन करो। गलती को प्रश्रय मत दो, गलती करने वाले से विद्वेष भी मत रखो।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हमारी आंखें औरों की खामियां देखते ही चौकन्ना होती हैं, मगर जुबान कायर बन जाती है। बोलती है मगर औरों के बीच। यदि गलती सिर्फ करने वाले को प्यार से, अभय से, हितैषी नजरिए से बताई जाए तो सुधार की संभावनाएं ज्यादा रहती हैं। यदि ऐसा नहीं होता है तो फिर एक साथ बहुत सी गलतियां बताने वाला भी आचार्यों की नजरों में अपना विश्वास खो बैठता है।

यह धारणा भी बन सकती है कि कहीं यह स्वार्थी तो नहीं है? प्रतिशोध, ईर्ष्या, द्वेष जैसे निषेधात्मक विचार तो नहीं? इसलिए भिक्षु ने मर्यादा बांधी—**दोष देखो तो तत्काल कह दो, दोषों को इकट्ठा मत करो। यदि वह स्वीकार न करे, तो फिर आचार्य को निवेदन कर निश्चिंत हो जाओ, क्योंकि दोष दर्शन दोष चिकित्सा नहीं।** यह सुधार की अपेक्षा कभी-कभी विद्रोह या बगावत फैलाने में सक्रिय भूमिका बन जाती है। यद्यपि अपराध का प्रायश्चित्त जरूरी है, पर आत्मशुद्धि के लिए यदि कोई अपनी गलती न स्वीकारे तो उसका बोझ हम क्यों ढोएं? हमारा दायित्व सिर्फ एक सीमा तक है।

एक आदतन संस्कार हर मनुष्य में होता है कि वो सबके बीच खुद को ऊंचा रखे। ऊंचा बनना और लोग उसे ऊंचा मानें, यह आकांक्षा मानवीय दुर्बलता का प्रतीक है। इसी मनोवृत्ति ने शायद समाज के बीच अमीरी-गरीबी जैसी भेद-रेखाएं खींची हैं। व्यक्ति बड़ा हो सकता है जाति से, कुल से, बल से, रूप से, ऐश्वर्य से, शक्ति से, सत्ता से, प्रतिष्ठा से मगर साधुत्व की भूमिका पर साधुता की जाति एक है। वहां शुद्ध-संयम, शुद्ध-आचार ही सबकी पहचान है। कोई किसी से बड़ा या छोटा नहीं, कोई अमीर-गरीब नहीं, कोई विद्वान, अल्पज्ञ नहीं सिवाय साधुता के। इसलिए कोई किसी को ओछी जुबान नहीं बोलता। अपमान नहीं करता। क्षमताओं की उपेक्षा नहीं करता। संविभाग में मतभेद नहीं रखता। तेरापंथ की इस मर्यादा ने साधुता को सिर्फ साधुता की आंख से देखा है।

मर्यादा पत्र की एक धारा है—संघ के पुस्तक पन्नों पर कोई अपना अधिकार न करे—यह ममत्व विसर्जन का जीवंत प्रशिक्षण है। साधुता में मूर्च्छा न प्राणी की होती है और न पदार्थ की। वह जहां से भी आसक्ति जोड़ता है, लक्ष्य से दूर चला जाता है। संघीय मर्यादा ने वैयक्तिक संबंधों के रागात्मक पक्ष को तो नकारा ही है, जड़ पदार्थों की पकड़ से भी मुक्ति-बोध दिया है। पुस्तक-पन्ने आदि सभी पदार्थ तो साधुचर्या में काम आते हैं। उन पर वैयक्तिक अधिकार की प्रतिष्ठापना नहीं की गई। वे सब कुछ संघ की विरासत हैं जिसको जब जितनी जरूरत हो। आवश्यकता और उपयोगिता की संवाहक बनाती है यह मर्यादा।

सचमुच! आचार्य भिक्षु ने 'स्व' को ऊपर रखा मगर स्वत्व पर हमेशा नियंत्रण दिया। यही सीमा साधुता के विकास की साधना सूत्र बनी है। संघ की विरासत सबके नाम है जिसकी जरूरत हो। स्वतंत्रता है सहभागिता की उपयोगिता में। मगर किसी पर मेरेपन का लेबल नहीं लगा सकते, यह साधना की भूमिका है। व्यवस्था-सूत्र से आबद्ध गण का हर सदस्य एक-दूसरे से जुड़ा है और वह संघ का एक अविभाज्य हिस्सा है। मगर जब कभी किसी कारणवश वह संघ से बहिष्कृत होता है तो आचार्य भिक्षु ने उससे परिचय न रखने का निर्देश दिया। बहिष्कृत होने के कई कारण हो सकते हैं—चरित्र पालन की अक्षमता, स्वभाव की अयोग्यता, सैद्धांतिक विचारभेद, वैराग्य का अभाव। गण में रहते हुए जो आत्मसाक्षी से संघीय मर्यादाओं को स्वीकृत करता है, गुरु की आज्ञा से संयम पालता है, संघीय अनुशासन, मर्यादा, संविधान और व्यवस्था के प्रति समर्पित एवं निष्ठाशील रहता है, वह गण से मुक्त होकर गण का साधु कैसे कहला सकता है? आज जिसे संघीय भूमिका पर सम्मान और प्रतिष्ठा मिल रही थी, कल संघीय सीमाओं को वह तोड़कर भी सबसे पूजा की आकांक्षा करे तो यह कैसे संभव हो सकता है। क्योंकि 'आज' का विश्वास तोड़ने वाला 'कल' का विश्वास कैसे दे सकेगा? फिर जो भी अलग होगा, वह संघ की आलोचना करेगा, खामियां बताएगा, व्यक्तिविशेष पर आरोपण करेगा। ऐसी स्थिति में यह संपर्क सान्निध्य भी कभी-कभी आस्था को कमजोर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए बाहरी गलत तत्त्वों से सुरक्षा आवश्यक है।

मर्यादा-पत्र की अंतिम धारा का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—**पद के योग्य बनो मगर उम्मीदवार नहीं।** यह संपूर्ण आकांक्षाओं का समीकरण सूत्र है। कोई भी शिष्य सत्ता और पद की भूख न रखे, कोई आचार्य बनने के सपने न देखे, कोई ऊंचे ख्वाब देखकर अपने अस्तित्व के पंख न काटे, क्योंकि सत्ता का व्यामोह व्यक्ति के कर्तृत्व को बौना कर देता है।

अधिकार योग्यता के पीछे चलते हैं, उन्हें छीना नहीं जाता, क्योंकि छीनी गई सत्ता पर न प्रजा भरोसा करती है और न जनमत सहयोगी बनता है। साधना में सत्ता का व्यामोह सबसे बड़ा अवगुण है। साधुता और सत्ता में कभी समन्वय न हो तभी मुक्ति का सफर गतिशील रह सकता है अन्यथा सत्ता साधुत्व को बदनामी का नकाब पहना देती है। मर्यादाओं का आलेख पूजा और प्रेरणा है, आस्था और आदर्श है, पुरुषार्थ और परिणाम है। इसीलिए इसकी बुनियाद पर आज हम शांति का, आनंद का, समाधि का अनुभव कर रहे हैं। ❑

विकास यात्रा तेरापंथ शासन की

साध्वी विमलप्रज्ञा

कलम के निर्माता ने कलम को सफलता का राज बताते हुए कहा-यदि तुम्हें अपने जीवन में सफलता हासिल करनी है तो कुछ बातों का ध्यान रखना होगा। जब तुम कार्यक्षेत्र में प्रवेश करोगी तब सबसे पहले तुम्हें छीला जाएगा, तराशा जाएगा। उस समय तुम्हें वेदना होगी, कष्ट की अनुभूति होगी। लेकिन तुम घबराना मत। सहिष्णुता ही तुम्हारी सफलता का प्रथम द्वार बनेगी। अभी तुम्हारे भीतर जोश है, नया खून है। तुम तेजी के साथ दौड़ना चाहती हो लेकिन तुम्हें कागज रूपी जो मार्ग मिलेगा वह कदाचित खुरदरा या रफ हो सकता है, जिस पर चलने में तुम्हें कठिनाई हो सकती है लेकिन किसी भी परिस्थिति से घबराना मत। हर स्थिति के साथ सामंजस्य करके ही तुम आगे बढ़ सकती हो।

अपनी सफलता के लिए तुम्हें समर्पण करना होगा। तुम्हारा स्थान कभी बड़े आदमी के हाथों में हो सकता है तो कभी छोटे आदमी के हाथों में भी पहुंच सकती हो। लेकिन जहां भी रहो पूर्ण समर्पण के साथ अपना कार्य करना है। यह समर्पण ही तुम्हारे महत्त्व को उजागर करेगा। जो तुम्हारे भीतर है वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। वही तुम्हारा अस्तित्व है। उसे अखंड रखते हुए अंतिम क्षण तक काम करती हुई अपना बलिदान कर देना। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—जो तुम लिखो, उसमें जो गलतियां हों, उसे मिटाते रहना। उन्हें रखना मत। जीवन की सफलता के ये महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं।

आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना की। आज तेरापंथ सफलता के साथ आगे बढ़ रहा है, क्यों? कलम के निर्माता की तरह आचार्य भिक्षु की अंतर्आवाज़ ने उनको कहा—तुम सत्य के मार्ग को प्रतिष्ठित करने जा रहे हो। अध्यात्म के क्षेत्र में आचार-क्रांति और विचार-क्रांति के द्वारा नई यात्रा का प्रारंभ कर रहे हो। तुम्हारी यह यात्रा संघर्ष भरी होगी, क्योंकि शिथिलाचार के संस्कार गहरी जड़ों तक व्याप्त है। उन्हें मिटा पाना इतना सरल कार्य नहीं है। शिथिलाचार के पके फोड़े के मवाद को शल्यक्रिया के बिना नहीं निकाला जा सकता। इसकी आचार क्रांति के लिए तुम्हें पूरा दम लगाना पड़ेगा।

लोग तुम्हारे विचारों के प्रति बगावत करेंगे। निंदा और अपमान के अंधड़ उठेंगे। रहने के लिए स्थान और खाने के लिए पूरा आहार उपलब्ध नहीं होगा। लेकिन जो इन सब कठिनाइयों से विचलित नहीं होता बल्कि हिमालयी संकल्प के साथ प्रवाह में कूदकर उस प्रवाह को अपनी ओर मोड़ लेता है, वही सफलता के साथ आगे बढ़ सकता है। जो द्वार खोलकर बैठता है, सूरज स्वयं चलकर उसके घर आकर उसे प्रणाम करता है।

तुम जिस सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हो, तुम्हारा साथ देने वाले बहुत थोड़े लोग होंगे। लेकिन तुम संख्या वृद्धि के लोभ में मत उलझना, क्योंकि कमजोर और सुविधावादी लोग कभी कष्टों में आहुति नहीं दे सकते। इस यात्रा में जीवन को झोंकने वाले, सत्य के प्रति समर्पित और शक्ति संपन्न व्यक्तियों की जरूरत है। शव का शृंगार करने से शरीर स्पंदित नहीं होता। उसके लिए प्राण तत्त्व की जरूरत होती है।

वह प्राण तत्त्व मिलेगा सत्यनिष्ठ और आचार निष्ठ व्यक्तियों से। जिसके हृदय में विवेक और रक्त में उत्साह और जोश होता है, सफलता उसकी सीढ़ी पर बैठी रहती है।

भगवान की आज्ञा तुम्हारी यात्रा का केंद्र बिंदु रहेगा। आज्ञा के बाहर तुम्हारा एक कदम भी इधर-उधर नहीं होगा। आज्ञा के प्रति तुम्हारा जो समर्पण होगा, जो निष्ठा होगी, वही तुम्हें सत्य से साक्षात कराएगी। आज्ञा के प्रति समर्पित व्यक्ति ही यात्रा को आगे बढ़ायेंगे।

तुमने जिस मार्ग पर चलने का लक्ष्य बनाया है, जो व्यक्ति तुम्हारे साथ चलने के लिए संकल्पित हुए हैं, वे सब छद्मस्थ हैं। गलतियां होना स्वाभाविक है लेकिन शिष्यों के व्यामोह में गलतियों को नजरअंदाज मत करना। उसका उचित परिष्कार करते रहना। तभी तुम्हारा पथ दीर्घकाल तक रोशनी बिखेरता रहेगा।

अपनी अंतर आवाज से प्रेरित आचार्य भिक्षु अपने जीर्ण-शीर्ण अतीत से संबंध विच्छेद कर सत्य की दिशा में चल पड़े। उस समय उनका साथ निभाने वाले टोकरजी, हरनाथजी, वीरभाणजी और भारमलजी–ये चार संत थे। कुछ दिनों बाद छह जयमलजी के टोले के तथा दो अन्य संत इस क्रांति-यात्रा में सहयात्री बनने उनके साथ आ गए।

चारों ओर आक्रोश का वातावरण। कदम-कदम पर स्थान की समस्या, आहार पानी की समस्या, भिक्षा में अपमान और तिरस्कार। लेकिन भिक्षु के मन में एक क्षण के लिए भी निराशा या उदासीनता का भाव नहीं आया। बल्कि धैर्य और साहस इन दो पहियों के सहारे उनका क्रांतिरथ आगे बढ़ता रहा।

हर इमारत को ठोस धरातल चाहिए। कलश और कंगूरों में लगे पत्थरों का महत्त्व नहीं होता। महत्त्व होता है चुपचाप पड़े नींव के पत्थरों का। आचार्य भिक्षु ने सुविधावाद की बहारों को छोड़ कठोर आचार के मार्ग को अपनाया। इसलिए इस पथ पर चलने के लिए मात्र छह साधु रह गए। कितने आए और कितने गए, यह गणना आचार्य भिक्षु का विषय नहीं रहा। उनका ध्येय था कि जो रहे वे आचारनिष्ठ और अपने लक्ष्य के प्रति संकल्पित हों।

संख्या व्यामोह भिक्षु को अपने पथ से विचलित नहीं कर सका। इसलिए महज कल्प से अधिक कपड़ा रखने के अपराध में साध्वियों का संघ से विच्छेद कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि आचारहीन व्यक्ति को संघ में महत्त्व देने का अर्थ है–संघ की नींव को कमजोर बनाना।

मुनि फतेहचंदजी के सैंतीस दिन की तपस्या। पारणे में बाजरे की ठंडी घाट मिली। उनका मनोबल भी गजब का था। समभाव से घाट से पारणा किया, कुछ ही क्षणों में संघ की बलिवेदी पर शहीद होकर नींव को गहरा कर गए। ये घटनाएं इस बात का संकेत करती हैं कि सत्य की इस यात्रा में सहभागी बनने वालों ने कितना सहा, कितना अभाव भोगा। लेकिन लक्ष्य से विचलित नहीं हुए।

इन सब परिस्थितियों में भी आचार्य भिक्षु रात-रात भर जागकर लोगों को तत्त्व का बोध कराते, उन्हें इतनी सरलता से समझाते कि तत्त्व गुड़राब की तरह उनके गले उतर जाता। एक बार जो उनके संपर्क में आ गया, वह उनका हो गया, इसलिए उनके संबंध में लोग कहने लगे–
भिक्खू रा भरमाया, पाछा कदै न आया।

पंद्रह वर्ष की कठिन यात्रा के बाद विरोधों का ज्वार धीमा पड़ा। लोगों ने तत्त्व को समझा, तब भिक्षु ने संघ की नींव को मजबूत बनाने के लिए कुछ लकीरें खींची–

- सब साधु-साध्वियां एक गुरु की आज्ञा में चलेंगे।
- विहार चतुर्मास गुरु आज्ञा से करेंगे।
- दीक्षा गुरु आज्ञा से देंगे।
- गुरु जिसे उत्तराधिकारी चुनें उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

एक छोटे से पन्ने में लिखा संविधान आज भी पूरे धर्मसंघ को बांधे हुए है। थोड़े से साधुओं के बीच बनी मर्यादाएं आज 700 साधु-साध्वियों का छत्र बनी हुई हैं। इसका कारण क्या है?

जिसके पास रचनात्मक क्षमता और हर समस्या के समाधान की क्षमता होती है वह संगठन काल के प्रवाह में बहता नहीं। नियति के थपेड़ों से टूटता नहीं। झंझा और तूफानों से कभी उजड़ता-उखड़ता नहीं। संस्कारी और मजबूत सदस्यों से ही संगठन का वर्चस्व बढ़ता है। सहज सौहार्द, परस्पर सहयोग, श्रमशीलता तथा त्रुटि के प्रतिकार का दृष्टिकोण संगठन को दीर्घजीवी बनाता है। यही तेरापंथ की प्रगति का राज है। ❑

परमार्थ के महान साधक आचार्य भिक्षु

साध्वी मुदितयशा

नए पथ पर चलने का संकल्प महानता की दिशा में प्रस्थान की पहली कसौटी है। अनेक बाधाओं के बावजूद उस संकल्प पर अडिग रहते हुए आगे बढ़ना महानता की दिशा में प्रस्थान की दूसरी कसौटी है। स्वीकृत संकल्प को पूर्णता तक पहुंचाकर उस पथ को जन-जन का पथ बना देना महानता की दिशा में प्रस्थान की तीसरी कसौटी है।

आचार्य भिक्षु महान थे। उन्होंने नए पथ का निर्माण किया और उस पर चलने के लिए संकल्पबद्ध हो गए। हजारों कठिनाइयों के बावजूद वे अपने संकल्प पर स्थिर रहे। तीव्र विरोधों की आंधी में भी उनकी निष्ठा की लौ सदा प्रकाशमान रही। वे परमार्थ के पथ पर अनवरत चलते रहे और दुनिया को परमार्थ का पथ दिखाया।

साधना का आधार : जिनवाणी

आचार्य भिक्षु आत्मदर्शी साधक थे। उनकी साधना का एकमात्र उद्देश्य था–आत्मा का उन्नयन। उनकी साधना का आधार था–भगवान महावीर की वाणी। जिस भवन का आधार मजबूत नहीं होता, वह हवा के झोंकों के साथ बह जाता है। जिस भवन का आधार मजबूत होता है, वह तेज तूफान में भी स्थिर खड़ा रहता है। उसे कोई नहीं हिला सकता।

एक साधक साधना करता है, उसके सामने कोई न कोई आधार अवश्य रहता है। बिना आधार और उद्देश्य के की गई साधना कभी-कभी भटकाव का निमित्त बन जाती है। आचार्य भिक्षु की साधना आधारशून्य नहीं थी। उन्होंने जिनवाणी का सशक्त अवलंबन लेकर साधना की दिशा में प्रस्थान किया। उनका स्पष्ट कथन था–'म्हारै तो जिनवाणी रो आधार'। आगम दिशासूचक यंत्र की भांति व्यक्ति को हर मोड़ पर रास्ता दिखाते हैं। स्थानकवासी संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद आचार्य भिक्षु ने आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। जयाचार्य ने आचार्य भिक्षु की तीव्र बुद्धि और अध्ययनशीलता का उल्लेख करते हुए लिखा है–

अल्प दिवस रै आंतरै, सिख्या सूत्र सिद्धांत।
तीव्र बुद्धि भिक्खू वणी, सुखदाई सोभंत।।

अध्ययन और अनुशीलन का क्रम जैसे-जैसे आगे बढ़ा, ज्ञान और आचार की दूरी उनके चिंतन पर चोट करने लगी। उनका सत्यनिष्ठ मानस आंदोलित हो उठा। कथनी और करनी की भेदरेखा ने उनके सामने अनेक प्रश्नचिह्न खड़े कर दिए।

प्रत्येक चिंतन समय का परिपाक मांगता है—इस सचाई को जानने वाला व्यक्ति कभी धैर्य नहीं खोता। आचार्य भिक्षु धृतिमान पुरुष थे। संघ में साधुत्व के अनुरूप जीवनशैली न होने पर भी वे कभी क्षुब्ध नहीं हुए। संयम और संतुलन का दीपक सदैव उनका पथ प्रशस्त करता रहा। वे हर तथ्य को सत्य की कसौटी पर कसते रहे। समय-समय पर गुरु के चरणों में आचार विषयक जिज्ञासाएं भी प्रस्तुत कीं। यद्यपि गुरु द्वारा प्रदत्त समाधान उन्हें कभी आत्मसंतुष्टि नहीं दे सका फिर भी वे कभी हताश नहीं हुए और न ही आशा का दामन छोड़ा। उनकी विनम्रता और शालीनता बरकरार रही।

एक घटना : एक निमित्त

समय की सूई अपनी गति से आगे सरकती रही। देखते-देखते सात वर्ष व्यतीत हो गए। अकस्मात घटनाचक्र में नया मोड़ आया। राजनगर के श्रावकों का खुला विरोध सचाई के अनावरण का एक बड़ा निमित्त बन गया।

विक्रम संवत 1815 का प्रसंग है। अनुश्रुति के अनुसार संतों का एक वर्ग राजनगर पहुंचा। उस समय राजनगर के श्रावक समाज में साधुओं के आचार व्यवहार को लेकर काफी ऊहापोह था। संतों को अपनी ज्ञानशक्ति और तर्कशक्ति पर बड़ा गर्व था। उन्होंने श्रावकों से मुक्त रूप में प्रश्न पूछने का आह्वान किया। श्रावक यह आह्वान सुन बहुत प्रसन्न हुए और निर्धारित समय पर सब मुनिश्री के पास एकत्रित हो गए।

साधुत्व की आचारविषयक शुद्धाशुद्धि पर प्रश्नोत्तरों का सिलसिला प्रारंभ हुआ। किसी प्रसंग पर श्रावकों ने आगम का प्रमाण मांगा। संतों ने आगम का पाठ निकाल कर देखा तो वह उनके अपने ही कथन को पुष्ट करने वाला नहीं था। उन्होंने उसका कुछ अंश छोड़कर पढ़ दिया। श्रावकों को आशंका हो गई। उन्होंने पाठ देखने की इच्छा जाहिर की। संतों ने पत्र देने से इनकार कर दिया। श्रावक पत्र लेने के लिए आतुर हो गए। परस्पर की खींचातान में वह पत्र थोड़ा-सा फट गया। श्रावकों ने संतों पर शास्त्रीय पत्र फाड़ देने का आरोप लगा दिया।

इस सारी घटना के कारण श्रावकों के मन विक्षोभ से भर गए। अनास्था की ऐसी लहर चली कि उन्होंने वंदना-व्यवहार भी बंद कर दिया। यह संवाद हवा के साथ गंध की भांति सर्वत्र फैल गया। आचार्य रुघनाथ जी ने सारी स्थिति को संभालने का दायित्व अपने योग्य शिष्य भीखणजी को सौंपा और उन्हें यथाशीघ्र राजनगर पहुंचने का आदेश दिया।

आंदोलित हो उठा अंतःकरण

शिष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है—गुरु की आज्ञा। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर भीखणजी ने तत्काल वहां से विहार कर दिया। लंबे-लंबे विहार कर भीखणजी जब राजनगर पहुंचे तो वहां के श्रावकों को बड़ी प्रसन्नता हुई। भीखणजी की जहां एक वैराग्यशील, बुद्धिमान और तत्त्वज्ञ साधु के रूप में व्यापक पहचान थी वहीं आम व्यक्ति के मन में उनके प्रति प्रगाढ़ आस्था का भाव था। श्रावकों ने खुलकर अपनी जिज्ञासाएं व्यक्त की। उन्होंने स्पष्ट कहा—'सरधा पिण साची नहीं, असल नहीं आचार'—आपकी श्रद्धा शुद्ध नहीं है और न ही आपका आचार शास्त्र सम्मत है फिर हम आपको वंदना कैसे करें?

आचार्य भिक्षु आगमज्ञ, सत्यनिष्ठ और पापभीरु थे। वे यथार्थ से अनभिज्ञ नहीं थे फिर भी उन्होंने अपने बुद्धिबल और वाक्कौशल से श्रावकों को समझाने का प्रयत्न किया और उन्हें पूर्ववत वंदना व्यवहार के लिए सहमत कर लिया। यद्यपि श्रावकों के मन पूरी तरह से समाहित नहीं हुए लेकिन भीखणजी के प्रति श्रद्धावश उनकी बातों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने यही कहा—आप वैरागी और बुद्धिमान साधु हैं, इसलिए हमने आपकी बात को स्वीकार किया है किंतु हमारी शंकाएं निरस्त नहीं हुई हैं।

मनुष्य प्रयोजन के बिना कोई प्रवृत्ति नहीं करता। आचार्य भिक्षु के राजनगर पधारने का मुख्य प्रयोजन पूरा हो गया। वे बाहरी तौर पर निश्चिंत हो गए, लेकिन श्रावकों की जिज्ञासाओं ने उनके अंतःकरण में उथल-पुथल-सी मचा दी। उनके सामने अनेक प्रश्नचिह्न

अंकित कर दिए। क्या हमारा आचार सचमुच साधुत्व के अनुरूप है? कलिकाल की दुहाई देकर क्या हम अपने आपको धोखा नहीं दे रहे हैं? कथनी और कथनी की दूरी क्या लोगों की आस्था के साथ खिलवाड़ नहीं है? ऐसा करके क्या हम कर्मों के बंधन शिथिल कर पाएंगे? आचार्य भिक्षु के मस्तिष्क में विचारों की ऐसी विद्युत कौंधी कि शरीर में भी सिहरन-सी पैदा हो गई। रात्रि के समय आचार्य भिक्षु को तीव्र ज्वर हो गया।

संकल्प के साथ उतरा दाहज्वर

आत्मदर्शी साधक के सामने सदा आत्मा रहती है। वह क्रिया के साथ उसकी परिणति को भी देखता है। वह वर्तमान में जीता है, पर उसकी दृष्टि भविष्य पर भी केंद्रित रहती है। आचार्य भिक्षु ने प्रखर वेदना के क्षणों में भी 'स्व' को विस्मृत नहीं किया। उन्होंने एक संकल्प कर लिया—'यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो गया तो निष्पक्ष भाव से सत्य मार्ग को अपनाऊंगा। भगवान की वाणी के अनुसार अपनी सारी क्रियाएं संपादित करूंगा।' तीव्र ज्वर के समय आचार्य भिक्षु की चिंतन धारा किस प्रकार आत्मोन्मुखी बनी। इस संदर्भ में श्रीमज्जयाचार्य ने कहा—

तीव्र ताप न वेदना भिक्खू ने अधिकाय।
तिण अवसर मैं आविया रहवा अध्यवसाय।।
म्है साचां नै झूठा किया श्री जिनवचन उठाय।
आऊ आवै इह अवसरै तो माठी गति पाय।।
द्रव्य गुरु काम आवै कदी तो हिव बात विचारूं।
कारण मिटीया निर्पक्ष सूं, साचो मारग धारूं।।
जेम सिद्धंत में जिन कह्यो चूंप धरी तिम चालूं।
काण न राखूं केहनी झट जिन मारग झालूं।।

इस संकल्प की स्वीकृति के साथ ही ज्वर धीरे-धीरे कम होने लगा। रात्रि ढलते-ढलते ज्वर पूरी तरह से उतर गया। आचार्य भिक्षु ने अगले दिन सूर्योदय के बाद लोगों के सम्मुख अपना निर्णय प्रस्तुत करते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा—'मैंने कल जो बातें कही थी, उनके विषय में एक बार पुनः विचार कर लेना चाहता हूं। आगमों की कसौटी पर कसने के बाद जो भी निष्कर्ष निकलेगा, वह मैं आपके सामने रख दूंगा।'

णाणस्स सारमायारो इस उक्ति को सामने रखकर आचार्य भिक्षु ने एक बार पुनः आगमों का अध्ययन, मनन करना शुरू कर दिया। उसके बाद उनको यही लगा—भूल हमारी है। हमारा आचार आगम सम्मत नहीं है। उन्होंने श्रावकों को अपने मंतव्य से अवगत कराते हुए कहा—श्रावकों! तुम लोग सही हो। साधुवर्ग शास्त्रसम्मत मार्ग से भटक गया है लेकिन अभी हमें धैर्य रखना होगा। गुरुदेव से चर्चा करने के बाद हम सही मार्ग पर अवस्थित होंगे। शुद्ध आचार, शुद्ध विचार और शुद्ध साधना का वातावरण निर्मित करने में सफल होंगे—ऐसी आशा है। श्रावक समाज को यही आशा थी। उन्होंने प्रसन्नता के साथ कहा—

प्रतीत आप तणी हुंती जिसी म्हारा मन मांय।
तिसी दिखाड़ी तुरंत ही इम कही हरथत थाय।।

अभिनिष्क्रमण : एक अभिनव क्रांति

गुरु और शिष्य—दोनों के मन में परमार्थ की सुवास व्याप्त होती है तो परस्पर के संबंधों में स्थिरता आती है। क्षुद्र स्वार्थों पर टिके संबंध कभी चिरस्थायी नहीं बनते। उनका हर चिंतन परमार्थ से अनुस्यूत रहता लेकिन आचार्य रुघनाथजी ने सुविधाओं और निजी स्वार्थों के दबाव में आकर परमार्थ को अनदेखा करना शुरू कर दिया।

जीवन में सुविधाओं का व्यामोह छोड़ने के लिए साहस चाहिए। आचार्य भिक्षु में जहां साहस कूट-कूट कर भरा था वहीं सुविधाओं के प्रति किंचित् भी आकर्षण नहीं था। उन्होंने आचार्य रुघनाथजी से अनेक बार निवेदन किया—गुरुदेव! हमें आगमवाणी के आधार पर अपने आचार-व्यवहार का निर्धारण करना चाहिए। जो बातें आगमों की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, उन्हें तत्काल छोड़ देना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट कहा—

जो थे मानो सूंतर नीं बात, तो तेहिज म्हारा नाथ।
नहिंतर ठीक लागै नहीं।
म्हैं घर छोड़या हो आतम तारण काम,
और नहीं परिणाम तिण स्यूं बार बार कहूं आपनै।

आचार्य भिक्षु ने अपने विनम्र व्यवहारों से गुरु के मनोभावों को बदलने का काफी प्रयत्न किया लेकिन ऊसर भूमि पर गिरी जलबूंदों की भांति उनका हर प्रयत्न विफल गया। विक्रम संवत 1815 के राजनगर चतुर्मास से लेकर 1817 चैत्र शुक्ला नवमी तक लगभग एक वर्ष और पौने पांच महीनों में अनेक बार चर्चाएं हुईं, पर कोई प्रयोजन फलित नहीं हुआ। आखिर चैत्र शुक्ला नवमी के दिन आचार्य भिक्षु ने आचार्य रुघनाथजी से अपना संबंध-विच्छेद कर लिया। रामनवमी का पवित्र दिन उस महामानव के अभिनिष्क्रमण का ऐतिहासिक दिन बन गया। इतिहास की दो धाराएं एक साथ मिल गईं।

वह क्षण महत्त्वपूर्ण होता है जो शताब्दियों को उजाल देता है। आचार्य भिक्षु के अभिनिष्क्रमण का क्षण एक ऐसा ही क्षण था जिसने शताब्दियों को आलोकित किया। आत्मविकास की अनजानी राहों पर आचार्य भिक्षु का संकल्प उत्तरोत्तर निखरता गया। वे एक महामानव बनकर दुनिया में छा गए।

मरण धार सुध मग लह्यो-महानता के शिखर पर आरोहण की एक शर्त है–सहिष्णुता, संघर्षों को झेलने की क्षमता। अभिनिष्क्रमण के बाद आचार्य भिक्षु के जीवन में संघर्षों की लंबी दास्तान प्रारंभ होती है। भोजन, पानी, वस्त्र और आवास के अभाव से लेकर गालियों की बौछार और मुक्कों के प्रहार को सहकर भी उस लौहपुरुष का मन कभी प्रकंपित नहीं हुआ। वे आलोचनाओं का कड़वा घूंट पीकर भी सदा मुसकराते रहे। उनका एक ही प्रण था–मुझे मरना मंजूर है, पर स्वीकृत पथ से एक पग भी इधर-उधर रखना मंजूर नहीं।

संघर्ष : रास्ते की सीढ़ियां

एक जर्मन कवि गेटे ने लिखा है–'पर्वत पर चढ़ाई करते समय शिखर मन को खींचते हैं, रास्ते की सीढ़ियां नहीं'। आचार्य भिक्षु के लिए संघर्ष रास्ते की सीढ़ियों की तरह थे। उन्होंने संघर्षों की कभी परवाह नहीं की। किसी ने उनको निह्नव कहा तो किसी ने गोशालक। कोई उनको जमालि कहकर पुकारता। कुछ लोग कहते–भीखणजी दान-दया के उत्थापक हैं। ये जीवों को बचाने में अठारह पाप बतलाते हैं। अतः इनकी संगति कोई न करे। इस प्रकार के कठोर वचनों के हर प्रहार को उन्होंने समभाव से सहन किया।

समाज में सकारात्मक सोच वाले लोग जहां अच्छाई को ही खोजने और ग्रहण करने का प्रयास करते हैं, वहां नकारात्मक सोच वालों को अच्छाई में भी बुराई के ही दर्शन होते हैं। वे अनपेक्षित रोष और आक्रोश में ही समय और शक्ति का व्यय करते हैं। आचार्य भिक्षु के प्रति भी अनेक लोगों के मन में रोष भरा रहता था। वे उनका मुंह देखते ही आपे से बाहर हो जाते। अनेकों ऐसे प्रसंग हैं जो स्वामीजी के अनुत्तर धैर्य और अप्रतिम क्षमाशीलता को उजागर करने वाले हैं।

महान जनोद्धारक आचार्य

महान व्यक्तियों का जीवन 'तिन्नाणं तारयाणं' का प्रतीक होता है। वे व्यक्ति विरल होते हैं जो स्वयं जलकर दूसरों को आलोक बांटते हैं। आचार्य भिक्षु ने अपनी साधना के द्वारा जो सत्य उपलब्ध किया उसे दूसरों तक पहुंचाने का अनथक प्रयास किया। उनकी सत्यनिष्ठा, वैराग्यवृत्ति और कष्ट सहिष्णुता ने आम जनता के मन में एक अव्यक्त आकर्षण पैदा कर दिया। लोग जिज्ञासु बनकर स्वामीजी के पास आने लगे। उन्होंने हर जिज्ञासु की जिज्ञासा का समाधान किया। लोगों को तत्त्व की पहचान कराई। धर्म के मर्म को समझाकर अनेकों के हृदय में सम्यक्त्व का बीजारोपण किया।

सूर्य की रश्मियां अंधकार को दूर कर धरती के कण-कण को प्रकाश से भर देती है। आचार्य भिक्षु ने अपनी अटल आस्था, गंभीर ज्ञान, प्रखर साधना, सतत अध्यवसाय और दूरगामी चिंतन से जिनवाणी का प्रकाश फैलाया। वे अध्यात्म के महान संदेशवाहक बनकर आए। आत्मोद्धार के उद्देश्य से उन्होंने अपनी यात्रा प्रारंभ की और एक महान जनोद्धारक आचार्य बनकर जनजीवन में प्रतिष्ठित हो गए। ❑

तेरापंथ का मेरुदंड : तेरापंथ धर्मसंघ

मुनि मदनकुमार

मर्यादा-महोत्सव तेरापंथ धर्मसंघ का मेरुदंड है। अध्यात्म-पुरोधा आचार्यश्री भिक्षु की तपस्या, तितिक्षा और तेजस्विता से पचीस दशक पूर्व राजस्थान की मरुस्थल भूमि में तेरापंथ का प्रसव हुआ। वि. सं. 1817 में आचार्य भिक्षु की भाव-दीक्षा के साथ तेरापंथ धर्मसंघ का उदय हुआ। यह प्रतिस्रोत के पथ पर चलने वालों के लिए उदितोदित महापथ बना। आचार्य भिक्षु को अनेक संघर्ष और विरोध झेलने पड़े। पांच वर्ष तक उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिला। घी, गुड़ और मिष्टान्न जैसे भोज्य पदार्थ सर्वथा दुर्लभ बने रहे। वस्त्र और स्थान का अभाव भी उन्हें सहना पड़ा। वे प्रभावी और प्रतापी पुरुष थे, जिससे आने वाली हर कठिनाई ने उनका मार्ग प्रशस्त किया। पंद्रह वर्ष की तीव्र तपश्चर्या के बाद वि. सं. 1832 में उन्होंने प्रथम मर्यादा-पत्र और उत्तराधिकार मनोनयन का कार्य सुसंपादित किया। इससे तेरापंथ धर्मसंघ का प्रारूप स्थिर हो गया।

तेरापंथ संविधान को समीचीन रूप मिला वि. सं. 1859 के मर्यादा-पत्र से। तत्कालीन धर्मसंघों में व्याप्त आचार शिथिलता और नेतृत्व दुर्बलता ने आचार्य भिक्षु को समयज्ञता और संविधान-विशेषज्ञता की अर्हता प्रदान की। उनकी अनुशासना और आचारनिष्ठा ने उन्हें मर्यादा-पुरुष की गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा से विभूषित किया। तेरापंथ आचार्यश्री भिक्षु द्वारा निर्मित राजपथ है। डॉ. सतकोड़ी मुखर्जी ने कहा था–'आचार्य भिक्षु मारवाड़ में पैदा हुए। यदि वे जर्मनी में पैदा हुए होते तो वे जर्मन दार्शनिक कॉण्ट से कम विश्रुत नहीं होते।'

भगवान महावीर और आचार्य भिक्षु ने मर्यादाओं का निर्माण किया जिनके परिणामस्वरूप तेरापंथ को नया रक्त मिला, जीवनदान मिला। इन मर्यादाओं ने तेरापंथ की अलग छवि और पहचान बनाई है। तेरापंथ धर्मसंघ की मूल मर्यादा है–पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति। यह मुनि जीवन का मूलाधार है। संघीय जीवन में अनुशासन की प्रतिष्ठा के लिए आचार्य भिक्षु ने मर्यादाओं का निर्माण किया था। तेरापंथ की मौलिक और आधारभूत मर्यादाएं पांच हैं–जिनके आधार पर तेरापंथ धर्मसंघ चल रहा है।

तेरापंथ की तेजस्विता, यशस्विता और शक्तिमत्ता का रहस्य इन मर्यादाओं में छिपा हुआ है। आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त ये मर्यादाएं एक नयी परंपरा का सूत्रपात है। सक्षम और कुशल नेतृत्व के अभाव में कोई भी संगठन विकासोन्मुख नहीं हो सकता, यह आचार्य भिक्षु का अनुभूत सत्य है। उनके जीवन का मूलमंत्र था–आचार-शुद्धि। इस लक्ष्यपूर्ति के लिए धर्मसंघ में संविभाग, समभाव, परस्पर सौहार्द, व्यवस्था और कलह-मुक्ति की महान चेतना का निर्माण आवश्यक था।

अध्यात्म का विकास व्यवस्था सापेक्ष है। व्यवस्था जितनी सुंदर हो, अध्यात्म के अवतरण की भी उतनी ही प्रबल संभावना बनती है। अध्यात्म और व्यवस्था का समीचीन सुयोग ही धार्मिक संगठन का भाग्योदय है। आचार्य भिक्षु व्यवस्था निपुण और दृष्टि संपन्न धर्मगुरु थे। मर्यादाओं का निर्माण उनकी अनुभव सिद्ध चेतना का सुपरिणाम है। तेरापंथ की ये मर्यादाएं सभी धर्मसंघों के लिए अनुकरणीय है।

आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ के नेतृत्व को बहुत शक्तिशाली बनाकर अध्यात्म परंपरा को नयी दिशा

प्रदान की। आचार्यश्री तुलसी ने तेरापंथ प्रबोध की भूमिका में लिखा–'आचार्य भिक्षु ने जिस समय नया रास्ता लिया, उनके साथ कोई आलोकदीप नहीं था। उन्होंने स्वयं दीया जलाया, पथ खोजा और उसे अध्यात्म के हर राही के लिए प्रशस्त कर दिया। प्रभु को पाने या प्रभु बनने का वह पथ 'तेरापंथ' के रूप में स्वीकृत हुआ।

तेरापंथ–एक अनूठा पंथ, एक आचार्य के नेतृत्व में चलने वाला पंथ, विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चलने वाला पंथ, सुविधावाद और व्यक्तिवाद को चुनौती देने वाला पंथ तथा परंपरागत मजहबों को झकझोर देने वाला पंथ है।'

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने भावपूर्ण शब्दों में लिखा– 'तेरापंथ एक प्रयोग है–अहंकार और ममकार विसर्जन का। अहंकार और ममकार–ये दोनों साधना की विकट बाधाएं हैं। आचार्य भिक्षु ने उन्हें देखा, अंतर्दृष्टि से देखा और उनके निराकरण का उपाय सोचा। मंत्र अवतरित हो गया। उस आधार पर एक नए तंत्र की रचना हुई–वह है तेरापंथ।'

आचार्य श्री महाप्रज्ञ के शब्दों में–'तेरापंथ के सौंदर्य और विकास का सबसे बड़ा कारण है–मर्यादा। अगर तेरापंथ धर्मसंघ मर्यादित नहीं होता, उसमें एक आचार्य का नेतृत्व नहीं होता तो तेरापंथ इतना विकास नहीं कर पाता। मर्यादा एक ऐसा कवच है, जो तेरापंथ को सदा सुरक्षित बनाए रखता है।' तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जय ने मर्यादा-महोत्सव मनाने की परंपरा का शुभारंभ विक्रम संवत 1921 में बालोतरा में किया। तब से यह मर्यादा-महोत्सव तेरापंथ के विकास का सशक्त सोपान बना हुआ है। आचार्यश्री तुलसी ने शताब्दी मर्यादा-महोत्सव के आयोजन बालोतरा में भावप्रणव शब्दों में फरमाया था–'श्रद्धा और विनय हमारे जीवन मंत्र हैं। अहिंसा हम सबका धर्म है। उसकी सीमा में प्रेम और वात्सल्य के सिवाय और है ही क्या? जहां अहिंसा है, वहां पराधीनता हो नहीं सकती। आचार्य शिष्य को अपने अधीन नहीं रखते, किंतु शिष्य हित के लिए आचार्य के अधीन रहना चाहता है।'

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा–तेरापंथ के आचार्य समूचे धर्मसंघ को अनुशासन और व्यवस्था देते हैं और संपूर्ण धर्मसंघ उसका पालन करता है। उसके मध्य में श्रद्धा के अतिरिक्त दूसरी कोई शक्ति नहीं है। तेरापंथ का विनम्र व हृदय प्रेरित अनुशासन और आचार्य केंद्रित व्यवस्था सचमुच आश्चर्य की वस्तु है। मर्यादा-महोत्सव उसका प्रतीक है। इस दिन आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त संविधान का वाचन, श्रद्धा-समर्पण का भव्य आयोजन तथा भावी कार्यक्रमों का उद्घोष किया जाता है। तेरापंथ धर्मसंघ में अध्यात्म और व्यवस्था का श्रेष्ठ संगम देखकर सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार ने कहा था–'तेरापंथ एक बहुत बड़ी शक्ति है। साधुओं और श्रावकों का बड़ा भारी बल है। विशेष बात यह है कि इनके सर्वोच्च शास्ता आचार्य हैं जिनके पैरों में पूंजी लुटती है, ये पूंजी के पीछे नहीं है।' तेरापंथ में न्याय, नीति, समता, संविभाग और समाजवादी व्यवस्था को देखकर जयप्रकाश नारायण ने कहा था–'आपके यहां तो सवा सोलह आना समाजवाद है। हम जो लाना चाहते हैं, वह आपके यहां शताब्दियों पहले आ चुका है।'

कृतज्ञता और विनम्रता के संस्कार तेरापंथ की अमूल्य निधि है। आध्यात्मिक उन्नयन और तत्त्व दर्शन की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित तेरापंथ का यह भव्य महल सुधीजन के लिए आकर्षण का केंद्र है। आचार्य भिक्षु का मौलिक और हृदयस्पर्शी चिंतन आह्लादपूर्ण है तथा तत्त्व विषयक उनकी गहरी दृष्टि और सूझबूझ ने तेरापंथ को चिरजीविता और प्राणवत्ता प्रदान की है। उनके महान अवदानों की चर्चा करते हुए तेरापंथ के प्रशस्त भाष्यकार आचार्यश्री महाप्रज्ञ लिखते हैं–'आचार्य भिक्षु ने अहिंसा के क्षेत्र में कुछ ऐसे सिद्धांत प्रतिष्ठित किए, जिनका मूल्य शाश्वत की भित्ति पर अंकित है। महात्मा गांधी ने साध्य-साधन की शुद्धि और हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत की जो प्राण-प्रतिष्ठा की, उसका पूर्वार्ध आचार्य भिक्षु की पुण्य लेखनी से लिखित हो चुका था।' ❑

मर्यादा और अनुशासन बंधन नहीं

प्रो. सुमेरचंद जैन

किसी समाज व राष्ट्र के सफल संचालन एवं विकास के दो महत्त्वपूर्ण जागरूक प्रहरी हैं–मर्यादा और अनुशासन। वही धर्मसंघ अध्यात्म की ऊंचाइयों को छू सकता है जो मर्यादा और अनुशासन से अनुप्राणित हो। मर्यादा और अनुशासन पतंग की डोर के समान हैं। जब तक पतंग की डोर हाथ में रहती है, पतंग को जहां कहीं भी मोड़ा जा सकता है। जैसे ही डोर छूट जाती है, उस पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। वह स्वच्छंद विचरण करने लगती है। ठीक यही स्थिति मर्यादाविहीन मनुष्य की होती है।

मर्यादा का सार्थक अर्थ शब्दकोश में नहीं मिलता। मर्यादा को मान, गौरव, सदाचार, नियम और सीमा के रूप में परिभाषित किया गया है। वस्तुतः तो ये सब मर्यादा के प्रतिफल हैं। ये मर्यादा के पूर्ण स्वरूप को उद्घाटित नहीं करते। प्रकृति, पशु, पुरुष और जड़-चेतन के संदर्भ में सोचें तो मर्यादा वह नैसर्गिक कवच है जो सृष्टि संतुलन बनाए रखता है। नपे-तुले शब्दों में मर्यादा को परिभाषित किया है–

सिर्फ एक अनुशासन यह है,
मर्यादा जंजीर नहीं।
यह तो पावन आर्ष पथ है,
पिटी हुई लकीर नहीं।।

मर्यादा बंधन नहीं है

मर्यादा को बंधन या प्रतिबंधन मानना उसका *अवमूल्यन करना है। प्रत्येक तत्त्व के साथ जुड़ी प्रतिबद्धता* है–मर्यादा। आचार्य से शिष्य पूछता है–मैं आपके पास बंधन-मुक्ति के लिए आया हूं। सारी वर्जनाओं, निषेधों, बंधनों से दुःखी होकर स्वतंत्रता की खोज के लिए उपस्थित हुआ है। आश्चर्य, आप मुझे बंधन से क्यों बांधते हैं? आचार्य बोले–'मैं तुम्हें बांध नहीं रहा हूं। मर्यादा बांधती नहीं है, क्योंकि यह बंधन नहीं है, विवशता नहीं है, स्वेच्छा से स्वयं द्वारा स्वीकृत व्यवस्था का नाम मर्यादा है। मर्यादा कानून की तरह थोपी नहीं जाती अपितु स्वयं के विवेक से स्वीकार की जाती है। मर्यादा बनाने का उद्देश्य किसी बंधन में डालना नहीं है अपितु व्यवस्थाओं, बाधाओं को हटाकर विकास के मार्ग को प्रशस्त बनाना है। मर्यादा आत्मानुशासन का जागरण है।

मर्यादा निर्माण के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा था–**चारित्र चोखो पालणे माहोमाही हेज राखणे खातर मरजाद बांधी है**–चरित्र की अनुपालना अच्छी तरह से हो और परस्पर प्रेम और सौहार्द बना रहे, इसलिए मर्यादाओं का निर्माण किया गया है।

अनुशासन

अनुशासन का मतलब है–अपना मालिक बनना। अनुशासन की पहली शर्त है–जिनमें अनुशासन पैदा करना चाहते हैं, उन्हें अपने विश्वास में लें। दूसरी शर्त है–जिनमें अनुशासन पैदा करना है उनमें आत्म-विश्वास पैदा करें। यदि आत्मविश्वास पैदा नहीं होगा तो अनुशासन कभी नहीं आएगा। अनुशासन के लिए जरूरी है–आत्म सम्मान और आत्म-विश्वास पैदा किया जाए। तीसरी शर्त है–जिनमें अनुशासन पैदा करना *है, उसे द्रष्टा बनाया जाए, दर्शन पढ़ाया जाए। ज्ञाता-*द्रष्टा होना केवल साधना की दृष्टि से नहीं, अनुशासन के जागरण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। अनुशासन तब आता है जब जीवन में देखने की शक्ति आती है। जो

तर्क के आधार पर अपना जीवन चलाता है, उससे कभी अनुशासन नहीं आ सकता।

अनुशासन का मार्ग है—सचाइयों को देखना, प्रकृति के नियमों को जानना, संघीय और सामाजिक नियमों को जानना। नियम बहुत बड़ा सत्य है। हम प्रकृति के नियमों का सम्मान करें। वैज्ञानिक युग में जीने वाला व्यक्ति अपना अनुशासन तो खो ही चुका है, प्रकृति के नियमों को भी उलट रहा है। अनुशासन तब आता है, जब हम प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। प्राकृतिक नियमों का सम्मान ही नहीं है तो कृत नियमों का सम्मान कैसे हो पाएगा? जिसके जीवन में संयम और नियम है, वह अनुशासन को छू सकता है। धैर्य, सहिष्णुता, शक्ति और आत्म-विश्वास—ये चार गुण अनुशासन की अर्हता को उद्भूत करते हैं।

आज कोई किसी के अनुशासन में चलना नहीं चाहता। क्या छोटा और क्या बड़ा, सब अनुशासक बनना चाहते हैं, अनुशासित नहीं। अनुशासन को बंधन समझा जाता है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के पश्चात् लोगों के विचारों में अकल्पनीय परिवर्तन आ गया है। कल का अनुशासित स्वयं सेवक आज अनुशासन के अभाव में पद और कुर्सी की दौड़ में राष्ट्र के हित को भी नजर-अंदाज कर रहा है। यह प्रवृत्ति समाज और देश के लिए बहुत अहितकर है।

मर्यादा और अनुशासन का महत्त्व

आज के युग में मर्यादा के बिना मानव का अस्तित्व भी सुरक्षित नहीं रह सकता। मर्यादाहीन जीवन मौत से भी बदतर और श्मशान की खामोशी से भी भयावह है। ऋषि, महर्षि, महापुरुष और धर्म ग्रंथ ही नहीं, सृष्टि का कण-कण भी मर्यादा की कहानी कह रहा है। सृष्टि का कोई भी घटक जब अपनी मर्यादा का उल्लंघन करता है तो अखिल विश्व को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

मर्यादा स्व स्वीकृत जीवनशैली होती है। मर्यादा मनुष्य को पराधीनता से बचाती है। मर्यादा में जीने वाला स्वयं को अपराधों, घृणित कार्यों और कषायों के उद्वेगों से बचाता रहेगा। परिणामतः वह अनावश्यक तनाव और दंड प्रक्रिया से बचेगा। उसको कोई बंदी नहीं बनाता, जो स्वयं मर्यादा से युक्त होता है। चूंकि मर्यादित व्यक्ति स्व-अनुशासित होता है, अतः वह परानुशासन की परिधि में नहीं आता।

मर्यादित व्यक्ति का आचरण और व्यवहार चूंकि नियमों से बंधा होता है, अतः खान-पान में शुद्धता, मात्रा आदि का विचार रखने से रोग उत्पन्न नहीं होंगे। अभक्ष्य और नशीले पदार्थों के सेवन से मुक्त रहने से वह स्वस्थ जीवन बिताता है। भोजन की मर्यादा लांघने वाले सदैव दुःख पाते हैं। औषधियों के सेवन, परहेज, पथ्य आदि में मर्यादा रखने वाले ही स्वस्थता को उपलब्ध करते हैं।

मर्यादा के अभाव में कई स्वस्थ परंपराएं टूटने लगी हैं। वैवाहिक संबंध सुदृढ़ नहीं रहे। गर्भपात बढ़ रहे हैं। उन्मुक्त यौनाचार से एड्स जैसी बीमारियां फैल रही हैं। मर्यादा गलत आकर्षणों से रोकती है। विवेक-विचलन की स्थिति नहीं बनती। मर्यादा की अनुपालना से ही संयम सफल होता है। श्रेयस् और शुभ का निर्धारण मर्यादा से होता है। अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखने की भावना बनी रहती है। संग्रह का व्यक्तिगत अधिकार होते हुए भी मर्यादित व्यक्ति अनावश्यक संग्रह नहीं करता। संग्रह प्रवृत्ति ही आज के युग की विकट समस्या है।

मर्यादा और अनुशासन का जीवंत उदाहरण है—तेरापंथ धर्मसंघ। सैकड़ों वर्ष पूर्व आचार्यश्री भीखणजी द्वारा लिखी गई मर्यादाएं आज भी पथ-प्रदर्शन करती हैं और संघ उनका अक्षरशः पालन करता है। लगभग सात सौ महाव्रती सदस्य एक आचार्य की आज्ञा में, देश के एक छोर से दूसरे छोर तक अकथनीय कठिनाइयों का सामना करते हुए सहर्ष विचरण करते हैं और जहां कहीं भी वे होते हैं, संघ की मर्यादा और अनुशासन का पालन करते हैं। आवश्यकता है—आज व्यक्ति मर्यादा में रहना सीखे। अनुशासित बने और इस बात को सदा याद रखे। अनुशासक बनाने वाले बहुत मिलेंगे, किंतु उसे निभाने वालों की गिनती अंगुलियों पर की जा सकती है। ❑

जहां एकतंत्र के साथ श्रद्धातंत्र है

मुनि पीयूषकुमार

अनुशासन, मर्यादा और संविधान–शब्द अलग-अलग हैं, मगर एक समान अर्थ को प्रतिध्वनित करते हुए प्रतीत होते हैं। और इस वर्ष वो एक काल को भी सूचित कर रहे हैं। 26 जनवरी देश में संविधान के प्रारंभ का दिवस। 26 जनवरी (तिथि के अनुसार माघ शुक्ला सप्तमी) 'तेरापंथ' संघ का मर्यादा महोत्सव। देश एवं तेरापंथ के प्रमुख एक ही दिन अपने अनुशासन में रहने वालों को संबोधित करेंगे, उनके लिए समयानुकूल विकासोन्मुख नई नीतियों की घोषणा करेंगे। द्रव्यतः वे भिन्न हैं, क्षेत्रतः भी भिन्न हैं, कालतः इस बार अभिन्न हैं तथा भावतः अनेक अंशों में अभिन्न हैं।

जन्म और मृत्यु के बीच की परिधि है जीवन। जब एक गोला बनाते हैं तो परिधि एक क्षेत्र को अपने दायरे में समाहित करती है। एक गोले के रूप में परिधि जितना क्षेत्र घेर सकती है, उतना क्षेत्र किसी अन्य रूप में घेर पाना संभव नहीं होता। गोला बनाने के लिए एक निर्धारित अनुशासन होता है, हर कदम के बाद एक निश्चित दिशा में निश्चित झुकाव।

जो उस अनुशासन का अंतिम बिंदु तक पालन कर सकते हैं, वे एक गोले का निर्माण कर सकते हैं। जो उस अनुशासन का पालन नहीं कर पाएंगे, कोई अन्य आकार बना लेंगे जिसकी परिधि तुलनात्मक रूप से कम क्षेत्रफल वाली होगी। इस पूरी कवायद का निष्कर्ष है कि अनुशासित व्यक्ति के जीवन में सफलता का दायरा हमेशा विस्तृत होता है।

भारतीय संस्कृति में अनुशासन के इस महत्त्व को जानते हुए आगे बढ़ने की बात कही गई है। इसे यहां धर्म कहा गया। हर क्षेत्र का अपना धर्म है, अपना अनुशासन है। इसे ही राष्ट्र-धर्म, समाज-धर्म, संघ-धर्म, कुल-धर्म, गण-धर्म, श्रुत-धर्म, चारित्र-धर्म आदि संज्ञाएं दी गई हैं। जिस क्षेत्र में जाएं उस क्षेत्र के अनुशासन धर्म का पालन करेंगे तो आप धार्मिक हैं, अन्यथा अधार्मिक हैं। धार्मिक व्यक्ति अथवा समुदाय जहां विकास करते हैं, वहीं धर्म पथ से विपरीत चलने वाले समस्याओं के बीहड़ में फंस जाते हैं यानी धर्म का पालन श्रेयस्कर है।

इसे समझ लेने के बाद प्रश्न यह खड़ा होता है कि धर्म का निर्धारण कौन करता है और उसके आधारभूत तत्त्व क्या होते हैं?

जैसा कि देखने में आता है, इतना तो तय है कि सामर्थ्यवान या शक्तिशाली ही धर्म का निर्धारण करते हैं। सामर्थ्य के रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अधिकांश पशुओं में तथा कहीं-कहीं मनुष्यों में भी शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति धर्म का निर्धारण करता है, जो कमजोर होते हैं, वे उसके द्वारा निर्मित धर्मानुशासन को मानते हैं और अनेक प्रकार के दुःखों से बचे रहते हैं।

कहीं-कहीं ज्ञान की अपेक्षा समर्थ व्यक्ति धर्म का निर्धारण करते हैं, जिनके पास उस कोटि का ज्ञान नहीं होता वे उस ज्ञानी द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते हैं। कहीं-कहीं जन-समर्थन की दृष्टि से समर्थ व्यक्ति धर्म का निर्धारण करते हैं। जो उस अपेक्षा से कमजोर होते हैं, वे नीति-निर्धारक नहीं होते। सामर्थ्य के अन्य रूपों में धन, शस्त्र, वंश आदि के कारक तत्त्व होते हैं। इनमें से किसी भी एक अथवा अनेक कारकों से संपन्न व्यक्ति धर्म का निर्धारक हो सकता है। नेतृत्व कर सकता है।

और यह भी तय है कि उस धर्म का पालन करके व्यक्ति को सुख मिलेगा, चाहे वह सुख आर्थिक हो, शारीरिक हो, मानसिक हो अथवा प्रतिष्ठागत हो। चाहे आप किसी राष्ट्र के सदस्य हों, अथवा कंपनी के कर्मचारी, धर्मसंघ/संप्रदाय के अनुयायी हो या किसी संस्था के सदस्य हर क्षेत्र का अपना धर्मानुशासन अवश्य होगा।

यह चिंतन का विषय अवश्य हो सकता है कि किस तरह के व्यक्ति द्वारा निर्धारित अनुशासन अधिक सुख देगा और किसका कम। इस मायने में भगवान महावीर द्वारा एक मानक निर्धारित किया गया। वह मानक हैं—वीतरागता। वीतराग द्वारा निर्धारित धर्म सर्वाधिक श्रेयस्कर होता है। हालांकि यह मानक उन्होंने आत्म-धर्म की दृष्टि से दिया परंतु यह अन्य धर्मों में भी लागू होता है।

कल्पना करें किसी राष्ट्र के नीति-निर्धारक किसी वर्ग, जाति या संप्रदायविशेष के प्रति रागासक्त हैं तो उनके द्वारा निर्धारित धर्म समानता एवं संविभाग के नियमों पर आधारित नहीं होगा। अतः धर्म का पालन करने वाले अनेक व्यक्ति इसका पालन कर संतुष्ट नहीं हो पाएंगे। विरोध के स्वर उठते रहेंगे, भाई-भतीजावाद का आरोप लगता रहेगा। राग-द्वेष से युक्त व्यक्ति द्वारा निर्मित धर्म न तो श्रेयस्कर होता है, न ही शाश्वत।

हम अपने आस-पास अनेक राष्ट्रों, संप्रदायों, संस्थाओं और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को विघटित होते हुए देख सकते हैं, उनके कारणों का विश्लेषण किया जाए तो कहीं-न-कहीं हमें राग-द्वेष का आभास अवश्य होगा।

एक प्रश्न तंत्र के संदर्भ में भी खड़ा किया जा सकता है कि कौन-सा तंत्र श्रेष्ठ है—एकतंत्र, जनतंत्र या गणतंत्र? लेकिन मेरा मानना है कि वीतरागता के मानक पर चलने वाला तंत्र किसी भी नाम से जाना जाए, वह अच्छा ही होगा। भारत वर्तमान में स्वतंत्र है, यह स्वनिर्मित तंत्र लोकतंत्र व गणतंत्र का मिला-जुला सुंदर नमूना है।

इससे पूर्व भारत परतंत्र था, वह अंग्रेजों द्वारा निर्मित तंत्र के अधीन था। उससे भी पहले दीर्घकाल से वह राजतंत्र में जीता आया। हमेशा ही यह देखा गया कि राग-द्वेष से युक्त होकर सत्ता चलाई गई तो जनता दुःखी हुई। समभाव रखा गया तो सुख का अनुभव किया गया।

राम के समय राजतंत्र था, परंतु रामराज्य बेहतरीन व्यवस्था का एक ऐसा मॉडल है, जिससे अन्य शासनों की तुलना की जाती है। अंग्रेजों के शासन का उच्चस्तरीय विरोध इसलिए हुआ, क्योंकि उनके लिए ब्रिटेन के प्रति रागभाव का परित्याग करना संभव नहीं था। अंग्रेज और भारतीय समुदाय 200 साल साथ रहकर भी समान धरातल पर नहीं पहुंचा, इसलिए दीर्घजीवी नहीं बन सका।

जनतंत्रात्मक शासन के 65 वर्ष बीत जाने पर भी यदि कहीं असंतुष्टि के स्वर उठते हुए नजर आते हैं तो वे विकास की असमानता, गरीबी-अमीरी के बीच की खाईं तथा जाति-संप्रदायगत विभेदों पर आधारित नीतियों के कारण है, जो कहीं-न-कहीं नीति निर्धारकों के चित्त में विद्यमान राग-द्वेष की ओर इंगित करते हैं।

तेरापंथ धर्मसंघ यूं तो एकतंत्रात्मक व्यवस्था का उदाहरण है, परंतु यहां शासक यानी आचार्य के चयन का एक आधार उसकी समानता एवं वीतरागता को समर्पित विचारधारा है–बेशक ज्ञान, प्रबंधन कला, लोकप्रियता, शारीरिक सामर्थ्य आदि मानकों का भी पर्याप्त ध्यान रखा जाता है।

इस तरह के आचार्य का अनुसरण श्रद्धा के साथ किया जा सकता है, अतः एकतंत्र होकर भी यह श्रद्धातंत्र कहा जाता है।

देश और संघ की मर्यादाओं को समर्पित दिवस का एक साथ आना निश्चय ही चिंतन के लिए नए आयामों का उद्‌घाटन करने वाला साबित हो सकता है। जिन समस्याओं से पूरा विश्व जूझ रहा है, उनका समाधान धर्म के रास्ते से होकर ही गुजरता है। हमें दीर्घकाल से चली आ रही अपनी नीतियों की पुनर्समीक्षा करनी होगी।

हो सकता है, कुछ नीतियां अल्पकाल के लिए फायदेमंद हो, लेकिन यदि दीर्घकाल के लिए नुकसानदेह है तो उन्हें त्यागना श्रेयस्कर होगा। मात्र मानव हित को केंद्र में रखने वाली वे नीतियां जो प्राणीजगत व वनस्पति जगत के लिए हितकर नहीं हैं, वे भविष्य के लिए नुकसानदेह साबित होंगी। जो नीतियां सिर्फ भारतीयों का कल्याण करती है।

परंतु पड़ोसी देशों का हित नहीं करती वे भी दीर्घजीवी नहीं हो सकती। हमें वीतरागता का वह पथ चुनना होगा जिसमें प्राणी मात्र का त्रैकालिक विकास हो सके। यहां तक कि 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' के नारे भी अल्पसंख्या वालों के प्रति द्वेष के सूचक हैं, अतः सर्वप्राणियों के हित और सुख को केंद्र में रखने वाला धर्म ही दीर्घजीवी होगा। ❑

सादगी का अर्थ

एक आदमी
जिसके पास
पैसा है बेहिसाब
फिर भी रहती है धुन
कमाने की दिन भर,
मगर खर्च के नाम से
बैठता है जिगर।
खाता है रूखा सूखा
रहता है आधा भूखा
इस जीवन शैली को मत करना सादगी
समझने की भूल,
क्योंकि यह है कंजूसी
और आधार है इसका लालच।
सादगी की
जननी है संतुष्टि
ज्यों-ज्यों बढ़ती है
जीवन में संतुष्टि
त्यों-त्यों सहज
अवतरित होती है सादगी।
और होता जाता है
लालच का अभाव
इसलिए ऐसा आदमी
नहीं करता कंजूसी
और फिजूलखर्ची,
नहीं बनता पैसे के पीछे अंधा
लेता है जीवन की
सहजता का आनंद
इसलिए सही है–
जितनी सादगी–उतना सुख।

मुनि आदित्यकुमार 'नचिकेता'

सबके लिए मर्यादा जरूरी

डॉ. हीरालाल छाजेड़ (जैन)

जीवन का मौलिक आधार है–मर्यादा। मर्यादा मनुष्य मात्र के लिए ही नहीं बल्कि प्रकृति के लिए भी जरूरी है। स्व की सीमा का अतिक्रमण होने से जीवनदायिनी प्रकृति विनाशक व प्रलयंकारी बन जाती है। सागर से सुनामी, ज्योति देने वाली अग्नि, प्राणों का आधार पवन सब प्राणहरण आवेग के रूप में प्रकट हो जाते हैं। यही स्थिति अनुशासन-मर्यादा के टूटने से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की होती है। जहां मर्यादा हटी कि 'दुर्घटना घटी'।

मनुष्य के बाहर की मर्यादा के साथ आंतरिक शरीर में व्यवस्था व मर्यादा के बिना शरीर बीमार बन जाता है। हमारा विशालकाय शरीर एक छोटे से ब्रेन (मस्तिष्क) के आदेश पर व्यवस्थित चलता है। थोड़ी-सी क्षणभर की अवहेलना शरीर के अंगों को निष्क्रिय या बेकार बना सकती है।

मर्यादा हर संगठन का मौलिक आधार है। व्यवस्था और मर्यादा के अभाव में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक संगठनों में खतरनाक परिणाम आ सकते हैं। इतिहास साक्षी है कि जब-जब मर्यादा टूटी, मानव जाति पर संकट गहराया, खून की होली खेली गई। न केवल समाज, राष्ट्र, परिवार, बल्कि धर्मसंघ, जो आदर्श का रूप माने जाते हैं, वे भी अनुशासन के अभाव में पिछड़ते देखे गये हैं।

आधुनिक युग में जैन तेरापंथ आम्नाय का मर्यादा-महोत्सव संविधान की विलक्षणता लिए हुए है। यह संविधान प्रत्येक साधु-साध्वी को अक्षरशः हृदय से पालन करना होता है। मर्यादा किसी पर जबरन थोपी नहीं जाती। सहज आत्मसाक्षी से स्वीकृत होती है। आचार्य भिक्षु ने अपने हाथों से जो लकीरें खींची, वे लकीरें आज इस धर्मसंघ की मर्यादा बनकर संघ को सुरक्षा प्रदान कर रही हैं। तार्किक युग में इसकी अनुपालना अन्य संगठनों के लिए प्रेरणा बन सकती है। अगर किसी को मर्यादा और अनुशासन का जीवित रूप देखना हो तो 'तेरापंथ धर्मसंघ' में आकर देखना होगा।

सिक्के के दो पहलू हैं–एक तरफ तेरापंथ धर्मसंघ के साधु-साध्वियों की मर्यादा और अनुशासन, तो दूसरी तरफ श्रावक-श्राविका वर्ग की मर्यादा और अनुशासन। चिंतन करना होगा कि श्रावक-श्राविका की मर्यादा का रूप कैसा हो? आचार्यश्री तुलसी ने 'श्रावकनिष्ठा पत्र' का निर्माण किया। प्रति पखवाड़े की चतुर्दशी को इसका हाजरी के समय वाचन किया जाता है किंतु हम कितना निष्ठा के साथ पालन करते हैं, यह चिंतनीय है।

तेरापंथ धर्मसंघ जैसे अनुशासित धर्मसंघ में किसी भी प्रकार का अतिक्रमण सह्य नहीं हुआ करता और न ही होना चाहिए। आपवादिक स्थिति में केंद्र का निर्देश अवश्य स्वीकार्य होता है। जब अतिक्रमण का दौर चलता है तो एक मानसिकता विकसित होने लगती है कि ये सभी कानून, कायदे मात्र कागजी कसरत हैं, जिनकी अनुपालना करना, न करना अथवा कोई तोड़ निकालना भी संभव हो सकता है। यह श्रावक समाज के लिए समझने की बात है।

प्रत्येक तेरापंथी सदस्य संघीय संस्थाओं का पदाधिकारी बनने का हक रखता है, पर पदाधिकारी बनने से पहले ध्यान दें और संघीय कार्यों व दायित्वों के प्रति जागरूक रहें। साधु-साध्वियों के नियमित दर्शन-सेवा-संपर्क से जुड़े। श्रावक प्रशिक्षण लेकर व संघ की रीति-नीति से विज्ञ बनकर ही संस्थाओं के अधिकारी बनने की तैयारी करें।

आवश्यकता है श्रावक की अर्थ-संपदा नहीं, चरित्र बोले। कथनी और करनी के बीच फासला न रहे ताकि समाज को उनसे प्रेरणा प्राप्त हो। इतना ही नहीं, सामाजिक कार्यों–विवाह-शादियों में बढ़ती अमर्यादित, बोझिल विकृतियों पर भी अंकुश लगे। साधु-संतों की तरह श्रावक समाज भी मर्यादा में रहकर संघ की प्रभावना बढ़ाने में योगभूत बनें। ❑

मर्यादा का संदेशवाहक पर्व

मुनि राकेश कुमार

कल-कल स्वर से बहती नदी की जलधारा के लिए जितना तट का महत्त्व है, उतना ही व्यक्ति और समाज के लिए मर्यादा का। तट को तोड़कर जिस तरह नदी उच्छृंखल हो जाती है, विकास का साधन नहीं होकर विनाश का कारण बन जाती है, उसी तरह मर्यादा-विहीन व्यक्ति और समाज उन्नति की दिशा में अग्रसर नहीं हो पाते, उनकी शक्ति का सही उपयोग नहीं हो सकता। बहुत से लोग मर्यादा को प्रगति का अवरोधक मानते हैं, इसलिए वे उसका नाम सुनते ही घबराते हैं, किंतु उनका यह चिंतन बिल्कुल एकांगी है। मर्यादा का महत्त्व केवल आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं है, सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्श भी उसके अभाव में पूर्ण नहीं हो सकते। वह पांवों को बांधने वाली बेड़ी नहीं है, किंतु उसके आधार पर विकास का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो जाता है। मर्यादा और कानून को एक समझने से नाना भ्रांतियां पैदा हो जाती है, पर वस्तुतः दोनों भिन्न हैं, दोनों के आधार में आकाश-पाताल का अंतर है। मर्यादा का जन्म श्रद्धा की भूमिका पर होता है। उसे व्यक्ति अंतःप्रेरणा से स्वीकार करता है। उसकी पृष्ठभूमि में त्याग, संयम और कर्तव्य-निष्ठा का तत्त्व छिपा रहता है। कानून का जन्म बाहर से होता है। वह दूसरों के द्वारा थोपा जाता है, उसके मूल में भय और दबाव की भावना होती है।

तेरापंथ धर्मसंघ का मर्यादा-महोत्सव मर्यादा का संदेशवाहक पर्व है। उसके साथ व्यक्ति विशेष की किसी घटना का संबंध नहीं है, मर्यादा एवं अनुशासन का इतिहास है। इसका प्रारंभ 151 वर्ष पूर्व तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य के कर-कमलों से हुआ था। उस युग में इस प्रकार के कार्यक्रम का चिंतन उनकी महान दूरदर्शिता का परिचायक है। मर्यादा-महोत्सव की प्रमुख तिथि माघ शुक्ला सप्तमी है। इसका सहवर्ती कार्यक्रम वसंत पंचमी से प्रारंभ होता है।

तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु एक क्रांतिकारी जैनाचार्य थे। उन्होंने धार्मिक जगत की बद्धमूल धारणाओं को नया मोड़ दिया। वे महान सिद्धांतवादी थे। उनका गतिशील जीवन-प्रवाह स्थितिपालकता से कोसों दूर था। अपने धर्मसंघ को बिल्कुल विशुद्ध, व्यवस्थित और अनुशासित रखने के लिए उन्होंने विविध मर्यादाओं का निर्माण किया। जिन्होंने आगे चलकर एक स्वतंत्र आध्यात्मिक संविधान का रूप ले लिया। आचार्यश्री भिक्षु ने सं. 1859 की माघ शुक्ला सप्तमी को अपने धर्मसंघ के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अपने जीवन का अंतिम मर्यादा पत्र लिखा था। तेरापंथ की सारी व्यवस्थाएं उसी पर आधारित हैं। मर्यादा-महोत्सव की तिथि के पीछे एकमात्र यही इतिहास है।

तेरापंथ की व्यवस्था के अनुसार सारे संघ का संचालन एक आचार्य के नेतृत्व में होता है। आचार्यश्री महाश्रमणजी आचार्यश्री भिक्षु के ग्यारहवें उत्तराधिकारी हैं। उनके मार्गदर्शन में करीब 750 साधु-साध्वियों तथा लाखों गृहस्थ अनुयायियों का व्यवस्थित संगठन है। इतने बड़े समाज को बिना भौतिक उपकरण व बाहरी आधार के एक श्रृंखला में गठित करने में मर्यादा-महोत्सव के कार्यक्रम को प्रमुख रूप से श्रेय दिया जा सकता है।

इस कार्यक्रम का प्रारंभ एक विशेष परिस्थिति में छोटे रूप में हुआ था। उस समय इसकी कल्पना भी इतनी स्पष्ट नहीं थी किंतु आज सारा संघ अपने सर्वोच्च आध्यात्मिक पर्व के रूप में इससे नूतन और मौलिक प्रेरणा प्रदान करता है। जिस प्रकार वसंत ऋतु सारी वनस्थली में अभिनव रस का संचार करती है। उसी ऋतु में आयोजित होने वाला यह समारोह तेरापंथ संघ की भावी प्रगति के लिए नई शक्ति और ऊर्जा का संचार करता है।

आचार्यश्री के निर्देश से देश के कोने-कोने में साधु-साध्वियों के ग्रुप धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हैं, वे जन-जन से संपर्क करते हुए अपने निर्दिष्ट कार्यक्रम को संपन्न करते हैं। विशेष अपवाद के अतिरिक्त मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर सभी आचार्यश्री के सान्निध्य में पहुंच जाते हैं एवं अपना संपूर्ण समर्पण करके आगामी वर्ष के लिए फिर से नया कार्यक्रम प्राप्त करते हैं, उन दिनों आचार्यश्री के दूसरे कार्यक्रम गौण हो जाते हैं। उनका अधिक समय साधु-साध्वियों के प्रशिक्षण और संघ की आंतरिक व्यवस्थाओं के सिंहावलोकन में बीतता है। आचार्यश्री के साथ सैकड़ों की संख्या में साधु-समाज के सहवास का वह समय अत्यंत हृदयस्पर्शी एवं प्रेरणादायक होता है।

विनय और वात्सल्य से भरे भारतीय संस्कृति के पुराने नमूने उस समय दर्शकों की आंखों के सामने सजीव हो जाते हैं। उस समय इतने विविधमुखी और विस्तृत कार्यक्रम होते हैं जिनका इस लघु निबंध में नामोल्लेख भी संभव नहीं हो सकता। साधु-साध्वियों द्वारा समर्पित वार्षिक विवरण को आचार्यश्री अपनी व्यस्तता में भी बड़ी सावधानी से पढ़ते हैं। विवरण पत्र में प्रचार, अध्ययन व साहित्य सर्जन आदि विविध प्रवृत्तियों के साथ-साथ आचार व व्यवस्था से संबंधित अनेक विषयों का वर्णन किया जाता है। कोई भी जिज्ञासु पाठक उन्हें पढ़ सकता है।

तेरापंथ के संविधान में जहां हम एकतंत्र का प्रभाव देखते हैं, वहां प्रजातंत्र और समाजवाद का अद्भुत समन्वय भी उसमें दृष्टिगोचर होता है। 'एक के लिए सब और सबके लिए एक' संघ की आंतरिक व्यवस्था में समाजवादी जीवन व्यवस्था के इस सूत्र का साक्षात्कार होता है। साधु-संघ की भोजन, शयन, रुग्ण परिचर्या एवं अन्य आवश्यक कार्यों की प्रणालियां बहुत ही आश्चर्यजनक हैं। मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर इस वैज्ञानिक संविधान का व्यावहारिक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है। साधना और कला में सामंजस्य स्थापित करने वाले अनेक कार्यक्रमों ने उस समय के आकर्षणों में इन वर्षों में और भी अधिक वृद्धि कर दी है। मर्यादा-महोत्सव का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य चातुर्मासिक नियुक्तियां हैं। उसका प्रारंभ वसंत पंचमी से होता है। आचार्यश्री अपने चिंतन और निर्णय के अनुसार एक-एक अग्रगण्य साधु को खड़ा कर जब चातुर्मासिक क्षेत्र की घोषणा करते हैं और वह अग्रगण्य साधु उसे श्रद्धा से स्वीकार करता है, तब अनुशासन एवं संघ-व्यवस्था का अनूठा चित्र हमारे सामने मूर्तिमान हो जाता है।

तेरापंथ की व्यवस्था के अनुसार किसी साधु का व्यक्तिगत नाम लेकर चतुर्मास की प्रार्थना नहीं हो सकती। किसका चतुर्मास कहां कराना उचित है, इसका निर्णय सिर्फ आचार्यश्री ही करते हैं।

आचार्यश्री भिक्षु ने मर्यादाओं का सत्य दिया, श्रीजयाचार्य ने मर्यादा-महोत्सव के रूप में उन्हें और अधिक कल्याणकारी व प्रेरणादायी बना दिया। आज अनेक धार्मिक संस्थाएं संगठन और एकता का मार्ग खोजने के लिए बहुत उत्साही और जिज्ञासु दिखाई दे रही हैं, मर्यादा-महोत्सव के इस विराट कार्यक्रम से उन्हें एक नया प्रकाश मिल सकता है। ❑

पावरफुल वुमैन हैं

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

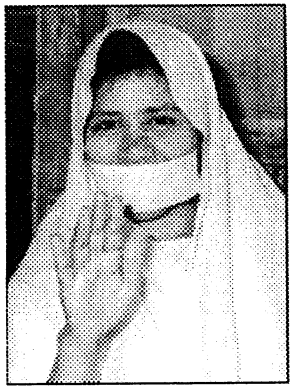

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी तेरापंथ शासन की एक विभूति है। अध्यात्म की उच्चतम परंपराओं, संस्कारों और महत जीवन मूल्यों से प्रतिबद्ध एक महान व्यक्तित्व हैं। उनमें त्याग, तपस्या, तितिक्षा, और तेजस्विता का अप्रतिम समवाय है। तेरापंथ के आचार्यों के निर्देशन में तेरापंथ के विशाल साध्वी-संघ का नेतृत्व करने वाली महानिर्देशिका और महाश्रमणी हैं।

उनकी वैचारिक उदात्तता, ज्ञान की अगाधता, आत्मा की पवित्रता, सृजनधर्मिता, अप्रमत्तता और विनम्रता उन्हें विशिष्ट श्रेणी में प्रतिष्ठापित करती है। उनकी सत्यनिष्ठा, चरित्रनिष्ठा, सिद्धांतनिष्ठा और अध्यात्मनिष्ठा अद्‌भुत है। अनुशासन और प्रबंधन पटुता से उन्होंने संघ में नए आयाम उद्‌घाटित किए हैं।

उन्होंने एक सफल साहित्यकार, प्रवक्ता और कवयित्री के रूप में साहित्य जगत में सुनाम अर्जित किया है। आचार्य तुलसी के साहित्य के संपादन और विशाल यात्रा साहित्य का आलेखन कर (आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी के उपलक्ष में आचार्य तुलसी के संपूर्ण साहित्य को 108 ग्रंथों में एकसाथ तुलसी वाङ्मय के रूप में सम्पादित कर प्रकाशन में लाना साहित्य जगत की एक विरल घटना है।) उन्होंने साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाई है।

इस शुभ्रवसना सरस्वती विग्रह में एक दृढ़निश्चयी, गहन अध्यवसायी, पुरुषार्थी और संवेदनशील ऋषि आत्मा निवास करती है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी का आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं प्रशासनिक व्यक्तित्व अप्रतिम है तथा समग्र दृष्टि से पूर्ण है। आपके साध्वीप्रमुखा चयनदिवस पर संपूर्ण धर्मसंघ की हार्दिक शुभकामनाएं।

एक में अनेक गुणों का समवाय

साध्वी शुभप्रभा

श्रद्धाशीलता, संयमशीलता, संवेदनशीलता, सहनशीलता, स्नेहशीलता, श्रमशीलता और सृजनशीलता के समवाय का एक नाम है—महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा जी। गुरु का वरदहस्त प्राप्त होते ही उनके भीतर गुरुत्व का बोध जागृत हो गया। संयम की वेदिका पर निर्माण के स्वर निर्मित होने लगे। जीवन के हर सांझ-सवेरे चेतना के द्वार पर दस्तक होने लगी। मन-प्रवाह में शम, सम, श्रम के फूल खिल आए। कर्तृत्व की मशाल जल उठी।

ॐ ह्रीं श्रीं गुरुवे नमः को अपनाना शुरू हो गया। यथा नियुक्तोस्मि का संकल्प सघन हो गया। तंत्रिका तंत्र में मैत्री की धारा प्रवाहित होने लगी। प्रमोद भावना के श्रद्धा-सुमनों से झोली भर दी। अंतःकरण में प्रसूत सहृदयता से आत्मीयता का समंदर लहराने लगा। माध्यस्थ अनुप्रेक्षा से स्थितप्रज्ञता की स्थिति निर्मित हो गई। ज्ञाता-द्रष्टा भाव वृद्धिंगत होने लगा। गुरु कृपा के वृक्ष की छाया में बैठकर साधुत्व का आनंद लेने लगीं।

हर क्षण सत्कर्मों के शिलान्यास हेतु तत्पर रहने लगीं। आत्माराधना और श्रुत उपासना ने विकास की बड़ी मीनारें खड़ी कर दीं। अध्ययन, अध्यापन और साधुचर्या में समय का नियोजन हुआ। **खणं जाणाहि पंडिए**-सूक्त हर कार्य में परिदर्शित होने लगा। सहज संतुलित, परिमित एवं आदरसूचक शब्दों के व्यवहरण से वह सबकी चहेती बन गई।

उपनिषद की गार्गी, रामायण की अनसूया, महाभारत की सुलभा, महावीर काल की चंदनबाला, बुद्ध की शिष्या गौतमी जैसे ऐतिहासिक नामों की तरह ही साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी तुलसी-युग की तरुणिमा हैं। रानी मदालसा, आत्मज्ञान की महापंडित मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी सुलभा और कुंती अथर्ववेद की अधिकृत विदुषी थी, वैसे ही साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी तुलसी वाङ्मय की अधिष्ठात्री देवी हैं।

एक नये दौर की शुरुआत

उनके मंगल आभावलय में शक्ति जागरण, पवित्र भाव, उत्साह का संचार और विकास करने का मनोभाव जागृत करने की क्षमता महसूस होने लगी। लेखन, प्रवचन, काव्य में आत्मा की सुवास, भक्ति का अनुराग एवं कुहासे को चीरकर उजाला भरने की हुंकार सुनी, देखी और पढ़ी जाने लगी।

वार्ता-संवाद में प्रेरणा का दरिया उमड़ने लगा। व्यक्ति के चेहरे को पुस्तक की भांति पढ़ने लगीं। फलतः तन, मन, शब्द, चेष्टा, व्यवहार से अंगुलि-निर्देश भी होता रहा। उनके जीने का एक नया अंदाज है, एक मनोवैज्ञानिक तरीका है, एक अद्भुत शैली है जिससे उन्होंने अगणित हृदयों में जीवन के रूपांतरण की भूमिका बनाई है।

चेतना की सोई संभावनाओं को जगाया है, जीवन की दिशा और दशा बदलने में प्रेरक बनी हैं। त्याग-वैराग्य की भावना को वर्धमान बनाया है। संघनिष्ठा, गुरुनिष्ठा, आत्मनिष्ठा के संस्कारों को ऊर्ध्वारोहित किया है।

उनके विश्वास की जड़ें बहुत गहरी हैं, इसलिए हवा का कोई भी झोंका उन्हें उखाड़ नहीं सकता। चिंतन स्वार्थ प्रेरित नहीं, किंतु सर्वार्थ प्रेरित और परमार्थ प्रेरित हैं, इसलिए हर आगंतुक 'मां का साया शीतल-सुखकर' अनुभव करता है। व्यवहार में सभ्यता, शालीनता और संयतता का परिदर्शन होने से वे सबके आकर्षण का केंद्र बनी हुई हैं। वे कभी भी ज्ञान की कुल्हाड़ी से श्रद्धा के कल्पतरु को काटने की सलाह नहीं देती।

समस्याओं के पिरामिड

उनकी दृष्टि में संसार में समस्याओं के पिरामिड इसलिए बने हैं कि आदमी स्वार्थों में लीन हैं, संवेदनशून्य हो गए हैं, वर्तमान को जीना भूल गए हैं, आकांक्षाओं के जुगनुओं में राह तलाशते हैं, आत्म प्रशंसा और परनिंदा में रस लेते हैं, पूरे दिन दूसरों की पोथी पढ़ते हैं, पराए घर में झांकते हैं। सही और गलत की शल्य चिकित्सा करने में असमर्थ हैं और मंजिल से बेखबर हैं।

अधिष्ठात्री देवी

उपनिषद की गार्गी, रामायण की अनसूया, महाभारत की सुलभा, महावीर-काल की चंदनबाला, बुद्ध की शिष्या गौतमी जैसे ऐतिहासिक नामों की तरह ही वे तुलसी-युग की तरुणिमा हैं। रानी मदालसा, आत्मज्ञान की महापंडित मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी सुलभा और कुंती अथर्ववेद की अधिकृत विदुषी थी, वैसे ही साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभा जी तुलसी वाङ्मय की अधिष्ठात्री देवी हैं।

मृत्युंजयी हस्ताक्षर

वे शब्द-शिल्पी हैं। अपने अक्षय-अक्षर देव की पूजावेदी पर शब्द-सुमन अर्पित कर उन्होंने अहोभाव का अनुभव किया। उन्हें काल के पक्ष पर अंकित कर वे स्वयं कालजयी, मृत्युंजयी हस्ताक्षर बन गई हैं। तुलसी जन्मशताब्दी पर एक साथ 108 पुस्तकों का लोकार्पण कर उन्होंने नए इतिहास की सर्जना की है। इस वृहत्तर कार्य को करते समय और करने के बाद अभिमान की प्रतिच्छाया ने उन्हें आवेष्टित नहीं किया। केवल श्रद्धाभाव से, निस्संग भाव से, कृतज्ञ भाव से, स्वानुभाव से वे अहर्निश इसकी परिक्रमा करती रही।

तुलसी वाङ्मय लोकार्पण समारोह की आयोजना से तेरापंथ धर्मसंघ, जैन शासन का ही नहीं, संभवतया साहित्यिक जगत में भी एक विरलतम उदाहरण प्रस्तुत हुआ है। एक-दो पुस्तकों का कार्य करने में पसीना छूटने लगता है वहां इतनी सारी पुस्तकों का एक साथ संपादन, मुद्रण और प्रकाशन कार्य किसी दैवीयशक्ति, गुरुशक्ति और आत्मशक्ति का ही चमत्कार माना जा सकता है।

एक प्रेरणाप्रद प्रसंग

तुलसी वाङ्मय की प्रस्तुति में इस बार साध्वीप्रमुखाश्री जी ने एक और भी प्रभावक मिसाल पेश की। इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करके भी उनके भीतर नाम की अभीप्सा नहीं जागी प्रत्युत उन्होंने अपनी अंतःप्रेरणा से स्फूर्त चिंतन को लाडनूं प्रवास में ही परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमण को मौखिक और लिखित रूप में निवेदन किया कि तुलसी वाङ्मय में किसी का भी नाम न आए। जिसने भी इसे सुना, वह स्तब्ध रह गया।

एक ओर आज जहां दूसरों की रचनाओं में अपना नाम देकर छपवाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है तथा दूसरों से लिखवाकर उसे अपने नाम से प्रकाशित करवाया जा रहा है, वहां अपने समय, सोच, शक्ति और श्रम का नियोजन कर उस कार्य को स्वांतःसुखाय मानना बहुत बड़ी बात है। उनकी यह अनाकांक्षी सोच अनुकरणीय आलेख है, प्रेरणाप्रद प्रसंग है और उल्लेखनीय उत्कीर्तन है। उनकी निस्संगता और निःस्पृह भाव ने सबको नई प्रेरणा दी है।

प्रथम और अंतिम

दूसरी बात, आदरास्पद महाश्रमणी जी ने पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी की आत्मकथा-मेरा जीवन : मेरा दर्शन (भाग 1 से 25 तक) अपने हाथ से लिखी। शायद इतिहास में यह भी स्मरणीय अनुसंधेय एवं ऐतिहासिक प्रसंग होगा कि एक महिला साध्वी ने अपने हाथ से इतनी पुस्तकें लिखी हों। उनकी प्रथम लिखावट ही अंतिम (फाइनल) कॉपी होती। इतनी साफ-सुथरी सुघड़ लिपि है, जिसे देखकर बस दांतों तले अंगुली ही दबाई जा सकती है।

"विकास का पहला ध्रुव सत्य है-**विनय**। जो सहज विनयशील होता है, उसके विकास का द्वार खुल जाता है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा सहज विनयशील हैं। आचार्य के प्रति विनय हो, आश्चर्य की बात नहीं, पर छोटे-बड़े सब साधुओं के प्रति इनका सहज विनय है।

व्यक्तित्व को विशिष्टता प्रदान करने वाला दूसरा गुण है–**सहिष्णुता**। साध्वीप्रमुखा की सहन-शक्ति प्रेरक है। शारीरिक कष्ट को भी ये इतनी सहजता से सह लेती हैं कि किसी को पता भी नहीं चलता।

इनकी तीसरी विशिष्टता है-**श्रम निष्ठा**। ये खूब परिश्रम करती हैं। इनकी नियम-निष्ठा बेजोड़ है। अशक्यता की स्थिति में भी विकल्प का प्रयोग नहीं करती।

चौथी विशिष्टता है–**स्वाध्यायशीलता**–ये जब भी जन सभा में बोलती हैं, कोई न कोई नई बात कहती हैं। यह नया चिंतन, मौलिक विचार, स्वाध्यायशीलता का ही परिणाम है।

विकास के ये चार द्वार हैं। साध्वीप्रमुखा के ये चारों द्वार उद्घाटित हैं। ये विशिष्टताएं इन तक ही सीमित न रहें। साधु-साध्वियों और समणियों में भी संक्रान्त हों।"

–आचार्य तुलसी

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जैन ने आत्मकथा के प्रथम पांच खंड पढ़कर इन्हें पत्र लिखा, जिसकी पंक्तियां हैं–'महाश्रमणी कनकप्रभा जी का यह एक ऐसा कार्य है जो कभी बास्वेल ने जॉनसन के लिए और महादेव भाई ने गांधीजी के लिए किया था।'

दुबारा नहीं पढ़ा

मैंने पढ़ा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने जीवन में 6000 गीत लिखे हैं। वे गीत बनाते, उसी में इतने तन्मय हो जाते कि अपने लिखे गीत को शायद उन्होंने दुबारा कभी नहीं पढ़ा। साध्वीप्रमुखाश्री जी के संदर्भ में भी यह बात घटित होती है। जब कभी इनके समक्ष यह कहा जाता है कि यह बात आपकी अमुक पुस्तक में है या अमुक पंक्ति सांसों का इकतारा की है, तो इनका एक ही प्रत्युत्तर होता है–'किसमें क्या है? मुझे नहीं मालूम, तुम जानो। मैं एक बार लिख लेती हूं, फिर याद नहीं रखती कि किसमें क्या है? दुबारा पढ़ने का अवसर भी नहीं होता।'

ऐसा लगता है कि इनमें फ्लोरेंस नाइटेंगिल, मदर टेरेसा और क्रिस्टल रोजर्स भी जीवित हैं। इसीलिए आत्मानुसंधान में तत्पर वे अब सिर्फ एक अस्तित्व ही नहीं हैं, पावरफुल वुमैन हैं यानी अधिकार और समृद्धि से संपन्न एक विराट व्यक्तित्व हैं। कमनीय कर्तृत्व है, वर्चस्वी वर्चस्व है और नमनीय नेतृत्व है। बस, यह शुभ संयोग सदा-सर्वदा सुलभ रहे, यही मंगल कामना है।

सम्यग चिंतन, सम्यग निर्णय, अनावेश की दिव्य मशाल।
मनमोहक मुसकान बांटकर कर देती सबको निहाल।।
ममतामयी की मंगल सन्निधि खुशियां बिखेरें आठों याम।
पा पावन पाथेय तुम्हारा खुले संस्कृति के नव आयाम।।

हमने पढ़ा....

देश के लिए कौन-सा सपना गढ़ा है?

कादंबरी मासिक पत्रिका का अगस्त, 2013 का अंक आजादी विषयक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक सामग्री लिए सामने आया। जिसका एक लेख न केवल सारगर्भित और विचारप्रधान लगा बल्कि सत्य को करीने से संवारने वाला आईना लगा। इस दर्पण में एक बार नहीं, हम बार-बार यदि अपना चेहरा देखें तो संभवतः हम समझ सकेंगे कि आजादी का सही अर्थ क्या होता है। 26 जनवरी, 2015 के गणतंत्र दिवस पर जैन भारती के पाठकों के लिए प्रस्तुत है **वरिष्ठ पत्रकार कमर वहीद नकवी** द्वारा लिखित लेख के महत्त्वपूर्ण कुछ अंश...

आजादी के बाद की हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है? वह है लोकतंत्र। जैसा भी है, तमाम बुराइयों और समस्याओं के बावजूद यह हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। आपातकाल के एक छोटे-से टुकड़े को छोड़ दें, तो दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को हम सफलतापूर्वक चला रहे हैं। जनता जनार्दन की जय! लेकिन हमारी सबसे बड़ी विफलता क्या रही है? जनता। एक साधारण नागरिक के तौर पर हमारा अपनी जिम्मेदारी न निभा पाना। सवाल तीखा है। वोट देने के अलावा आप देश के प्रति अपनी कौन-सी जिम्मेदारी पूरी करते हैं? अपने देश के लिए आपने कौन-सा सपना गढ़ा है? अगर कोई सपना है आपके पास, तो उसे पूरा कौन करेगा? सरकार? प्रधानमंत्री? मुख्यमंत्री? अफसर? पार्टीवाले? और आप क्या करेंगे? बस ताली बजाएंगे? वोट दे आएंगे? नुक्कड़ पर गरमागरम राजनीतिक बहस कर लेंगे? बस।

सारी गड़बड़ यहीं है। देश इसीलिए वहां तक आगे नहीं बढ़ पाया, जहां तक वह आसानी से बढ़ सकता था। इसीलिए सरकार कोई भी आए, पार्टी कोई भी सत्ता में हो, देश में बुनियादी तौर पर ज्यादा कुछ कभी नहीं बदलता। बदल भी नहीं सकता क्योंकि लोकतंत्र की बुनियादी इकाई नागरिक होता है। और जब तक इस बुनियादी इकाई के तौर पर हर नागरिक या ज्यादातर नागरिक अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाएंगे, तब तक भला कोई बुनियादी बदलाव कैसे आ सकता है?

बात को जरा साफ करते हैं। देश की सबसे बड़ी समस्या क्या है? लोगों के जवाब अलग-अलग हो सकते हैं, होंगे भी, लेकिन मेरा मानना है कि देश की इकलौती सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार है। जिस दिन हम भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा पाए, इसे आधा भी कम कर पाए, उस दिन विकास के सारे पैमानों पर देश शायद दुनिया में सबसे आगे निकल जाए। लेकिन भ्रष्टाचार का मतलब क्या है? क्या सिर्फ रिश्वतखोरी ही भ्रष्टाचार है? क्या गलत तरीके से सरकारी ठेके ले लेना, टैक्स चोरी करना, नौकरियों में पक्षपात कर देना, फर्जी तरीकों से परीक्षाएं पास करा देना, भाई-भतीजावाद आदि-आदि–यही भ्रष्टाचार है और क्या लोकपाल, लोकायुक्त, सतर्कता आयोग जैसी तमाम संस्थाओं के जरीए भ्रष्टाचार पर काबू पाया जा सकता है? एक नागरिक के तौर पर हममें से हर कोई, हर दिन जो अनगिनत भ्रष्टाचार करता है, उस पर क्या कहना है आपका?

नागरिक का भ्रष्टाचार? अन्ना के आंदोलन के दौरान जब सारा देश भ्रष्टाचार के विरोध में मुट्ठियां भींचे था, तब अगर उतने लोगों ने भी संकल्प ले लिया होता कि वे अब से रोजमर्रा का भ्रष्टाचार नहीं करेंगे तो देश में अब तक बहुत-कुछ बदल गया होता। यह रोजमर्रा का भ्रष्टाचार क्या है? भला बताइए कि दिन में सैकड़ों बार ट्रैफिक नियमों को जान-बूझकर कौन तोड़ता है? आप तोड़ते हैं न? बस, ट्रेन, रेलवे स्टेशन, सड़क या ऐसी किसी भी जगह जान-बूझकर गंदगी कौन फैलाता है? सामान्य रहन-सहन में सरकार के बनाए सारे नियमों का मखौल हर दिन कौन उड़ाता है? अब इससे आगे बढ़िए, ऐसा क्यों है कि हम आश्वस्त होकर सब्जी भी नहीं खा सकते? जाने कितना कीटनाशक छिड़का गया होगा? जाने कितने गंदे पानी से सींची गई होंगी सब्जियां। जाने कैसे नकली रंगों से रंगी गई होंगी? दूध? पता नहीं सिंथेटिक है या मिलावटी? कितना यूरिया मिला है? खाने की किसी चीज पर भरोसा नहीं कर सकते कि इसमें मिलावट है या नहीं? दवा? असली या नकली, पता नहीं? कितने पर्सेंट असली है? यानी साल्ट की जितनी मात्रा होनी चाहिए थी, उतनी है या कम है? जो दवाएं डॉक्टर की पर्ची के बिना कतई नहीं मिलनी चाहिए, कैमिस्ट उन्हें यों ही दे देता है। सिरिंज जिससे इंजेक्शन लगा, वह नई या 'रिसाइकिल' है?

यह सब भ्रष्टाचार नहीं है क्या? और हमारे देश में यह इतना ज्यादा क्यों है? और क्या इसे कोई सरकारी मशीनरी रोक सकती है? बिलकुल नहीं। यह तभी रुक सकता है जब देश के नागरिकों के पास देश को गढ़ने का कोई सपना हो और वह सपना उनका अपना हो। जब उन्हें इस बात का एहसास हो कि जितनी बार वह कोई नियम तोड़ते हैं, उतनी बार वह देश का अपमान करते हैं।

दुनिया में बहुत-से देश हैं। भारत से बहुत छोटे और बहुत पिछड़े, लेकिन वहां के नागरिक अपने देश के प्रति कहीं ज्यादा समर्पित और ईमानदार हैं। ईमानदारी की हमारी परिभाषा क्या है? मुझे छोड़ बाकी सबको ईमानदार होना चाहिए। मैं जो थोड़ी-बहुत गड़बड़ियां करता हूं, इतना तो चलता है। लेकिन ये सब एक-एक आदमी की थोड़ी-थोड़ी गड़बड़ियां मिलकर एक अरब गड़बड़ियां हो जाती हैं। जनाब! सोचिए, इन एक अरब गड़बड़ियों को कौन और कैसे रोक सकता है?

आज गंगा को निर्मल करने की बड़ी चर्चा हो रही है। इतने बरसों में गंगा को किसने गंदा किया? हमने, आपने। गंगा की सफाई के लिए सैकड़ों अभियान शुरू हुए, बड़े-बड़े लोग जुड़े, अरबों-खरबों रुपये तब से अब तक गंगा की सफाई पर फूंके जा चुके हैं, लेकिन हुआ क्या? सफाई अभियान में पैसे बहते रहे, और गंगा हर नए दिन पहले से और गंदी होती रही। यह पैसे किसके थे? आपके ही। अगर आपने तब से गंगा की सफाई में अपना हाथ भी बंटाया होता, तो गंगा बहुत पहले ही निर्मल हो चुकी होती और इस पैसे का बहुत बड़ा हिस्सा दूसरे कामों में लगा होता। यही हाल यमुना का है, यही हाल जम्मू कश्मीर में झेलम का है, जो साफ होती तो टूरिस्टों से हर साल अरबों रुपए कमाती, लेकिन अपने दोनों किनारों पर बसे घरों की कृपा से आज वह गंदगी से बजबजा रही है।

और जब एक नागरिक के तौर पर हममें मामूली ईमानदारी भी न हो, तो हम एक ईमानदार राजनीतिक व्यवस्था न तो चुन ही सकते हैं और न ही ऐसी कोई उम्मीद कर सकते हैं। इसीलिए, अपनी लंबी उम्र के बावजूद हमारा लोकतंत्र अकसर एक राजनीतिक नौटंकी की शक्ल में दिखने लगता है, और इसीलिए सारी प्रतिभा, सारे प्रयास, सारी योजनाओं और संसाधनों के बावजूद हम वैसा विकास नहीं कर पाए, जो हम बहुत आसानी से कर सकते थे। इसलिए आजादी के इस पर्व पर अगर हमारा हाथ खाली है, तो सिर्फ एक चीज से और वह यह कि एक नागरिक के तौर पर हमने अपने देश के लिए अपना कोई सपना नहीं गढ़ा। क्या हम देश को अपना एक सपना देंगे? क्या हम देश बदलने के लिए खुद को बदलने को तैयार हैं? ❑

कुछ ऐसा हो, जो पहचान बनाए

बोनापार्ट नाम का एक युवा, आगे चलकर नेपोलियन के नाम से विश्व विख्यात हुआ, जिसने आत्म-संयम और दूरदर्शिता से अपने व्यक्तित्व को गढ़ा। दृढ़ इच्छा-शक्ति और स्वप्नों को साकार करने का एक नाम है—नेपोलियन। चरित्र-निर्माण, जीवन की अमूल्य धरोहर होती है। इच्छाओं का नियंत्रण और विलासिता को त्यागे बिना लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। लक्ष्यहीन जीवन रेत के पहाड़ के समान, तूफानों का दास होता है।

नेपोलियन के किशोरावस्था की घटना है। उन्हें अपने अध्ययन के लिए अक्लोनी नामक स्थान में एक नाई के घर पर रहना पड़ा था। वह आकर्षक व्यक्तित्व वाला एक युवा था। नाई की स्त्री उस पर मुग्ध हो गयी और उसको अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती रहती। परंतु नेपोलियन के सामने हिमालय जैसा महान लक्ष्य था। जब भी नाई की स्त्री बोलने का प्रयास करती, वह हाथ में पुस्तक लेकर पढ़ने लग जाता। नेपोलियन की दिनचर्या बड़ी संयमित और अनुशासित थी।

वही नेपोलियन एक दिन अपने देश का प्रधान सेनापति बना। उसे एक बार उस स्थान पर जाने का मौका मिला जहां रहकर उसने शिक्षा ग्रहण की थी। नेपोलियन को वह घर देखने का मन हो गया जहां रहकर उन्होंने अध्ययन किया था। वह महान व्यक्ति नेपोलियन अप्रत्याशित उस नाई के घर पहुंचा। उस समय नाई की स्त्री अपनी दुकान पर बैठी थी। नेपोलियन उसके सामने खड़ा था और उस स्त्री से बतियाने लगा—तुम्हें याद है कि एक बोनापार्ट नाम का युवक पढ़ने के लिए आपके घर रहता था। महिला झुंझलाकर बोली—आपने किसी नीरस व्यक्ति का नाम ले लिया, वह भी कोई याद रखने वाला व्यक्ति था। जो न गाना जानता था और न नाचना। उसे तो मीठी बातें करनी भी नहीं आती थी, हमेशा किताबों में डूबा रहता था।

नाई की स्त्री की बातें सुनकर नेपोलियन खिलखिलाकर हंस पड़ा और कहने लगा—देवी! तुम ठीक कहती हो, वह ऐसा ही युवक था, पर हां—वह बोनापार्ट यदि तुम्हारी रसिकता में उलझ गया होता तो आज देश का सेनापति बनकर तुम्हारे सामने खड़ा नहीं होता। नाई की स्त्री सामने खड़े सेनापति को देखकर अवाक रह गयी, क्योंकि यह वही बोनापार्ट युवक था, जिससे वह सम्मोहित थी।

नेपोलियन लक्ष्य को पाने के लिए पागल था। कठोर श्रम उसकी दैनिक चर्या थी। शत्रु देश से युद्ध छिड़ा था। एक रात्रि अंगरक्षक उन्हें जगाकर बोला—इस समय सेना का अमुक अधिकारी आपसे मिलना चाहता है। नेपोलियन गहरी नींद में सो रहे थे। अत: विस्तर पर पड़े हुए उन्होंने करवट बदली और कहा—क्या बात है? सेना का अधिकारी बोला—दक्षिण की ओर से शत्रु सेना ने आक्रमण कर दिया है, क्या किया जाये?

नेपोलियन जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने अंगरक्षक से कहा–किनारे की पेटी में 34 नं. का नक्शा रखा है। उसे कमांडर को दे दें। सुबह होते ही युद्ध का ताजा समाचार भिजवाएं। उस नक्शे में यह दर्शाया गया था कि दक्षिण दिशा से आक्रमण होने पर क्या बचाव किया जाये तथा जवाबी कार्यवाही कैसे की जाये।

कमांडर पूर्व से ही तैयार योजना को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। योजनानुसार युद्ध की संरचना की गयी और नेपोलियन को विजय श्री मिली। यह शुभ संदेश देने जब कमांडर नेपोलियन से मिलने आया तो उसने सम्मान सहित यह बात पूछ ली कि सर! आपने यह योजना इतनी जल्दी कैसे तैयार कर ली थी। क्या कोई दैवीय-शक्ति आपके साथ है? नेपोलियन बोला–हां, दो देवियां मेरे साथ हैं–**एक दृढ़ इच्छा शक्ति और दूसरी दूरदर्शिता।**

जीत का पक्का विचार मेरे मन में है, अत: कल की योजना बनाकर ही मैं बिस्तर पर जाता हूं। भविष्य की संभावनाओं के प्रति पहले से सचेत रहना चाहिए। शत्रु को कमजोर मानकर युद्ध नहीं लड़ना चाहिए। और शस्त्रों की ताकत के साथ मनोबल का प्रयोग किया जाना चाहिए, तभी लक्ष्य हासिल हो सकता है। कमांडर प्रधान सेनापति की बातें गौर से सुन रहा था।

जीवन का मर्म

विचारों से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। प्राय: नकारात्मक चिंतन वाले लोग तनाव में जीने लगते हैं। उनका मुख हमेशा म्लान बना रहता है। ऐसे लोग समय से पहले बूढ़े दिखने लगते हैं। जबकि प्रकृति के साथ जीने वाला, समय की दस्तकों से प्रभावित हुए बिना 'एवरग्रीन' बना रहता है। व्यक्ति को चाहिए कि चौबीस घंटे में केवल 24 मिनट मुक्त हंसी हंसकर फेफड़ों की कसरत कर ले, तो विषाद की छाया उसके मुखमंडल पर डेरा नहीं डाल सकेगी।

एक बार पंडित जवाहर लाल नेहरू से मिलने उनके एक मित्र आये। बातचीत के दौरान उन्होंने चुटकी लेते हुए कहा–पंडितजी! आप की इतनी उम्र हो गयी है और आप गुलाब के फूल की तरह ताजे दिखाई देते हैं। मैं उम्र में आपसे छोटा हूं। लेकिन बूढ़ा दिखाई देने लगा हूं। आपकी इस ताजगी का रहस्य क्या है? पंडितजी उन्मुक्त हंसकर बोले कि इसके तीन कारण हैं–

1. मैं बच्चों के साथ घुलमिल जाता हूं। उन्हें प्यार करता हूं। जब तक उनके साथ रहता हूं, मेरा बचपन लौट आता है। उनका भोलापन और निश्छलता मुझे बहुत प्रभावित करते हैं। बेलाग सीधी सपाट बातें करना उनकी सचाई है। बालक एकदम वर्तमान में जीता है बड़ी बेफिक्री और अनासक्त भाव से। युवा भविष्य की कल्पनाओं में और बड़ी-बड़ी आकांक्षाओं में जीता है, सुख दु:ख की संवेदनाएं उसके साथ जुड़ जाती हैं। वृद्ध अपने अतीत और स्मृतियों के सहारे जीने लगता है। वृद्ध का भविष्य ज्यादा नहीं होता। अत: बालक का वीतराग भाव हमें तरोताजा बने रहने के लिए प्रेरित करता रहता है।

2. मैं प्रकृति के साथ जीने का प्रयास करता हूं। कल कल बहती नदी, पहाड़ से गिरते झरने, जल प्रपात का धवल धुआं, वनों की हरियाली, चहकते रंग-बिरंगे पक्षी, वनाच्छादित हिल स्टेशन, रात्रि में चमकता चांद और झिलमिलाते तारे, ऐसी प्राकृतिक संपदायें हैं जिन्हें देखकर मैं अपने को भूल जाता हूं और उनसे घनिष्ठ नाता जोड़ लेता हूं।

3. लोग प्राय: छोटी-छोटी बातों में उलझे रहते हैं। वे समय की कीमत को गौण कर क्षुद्र स्वार्थों में अपना कीमती दिमाग खपाते रहते हैं। मेरे दिमाग पर ऐसी छोटी-छोटी बातों का कोई खास असर नहीं पड़ता। मेरा दृष्टिकोण सकारात्मक और रचनात्मक है और ऐसा होना चाहिए। हर बात को आलोचना के दायरे में नहीं लेना चाहिए। यही करण है कि मेरे राजनैतिक विरोधी भी मेरी निजी जिंदगी में एक अच्छे दोस्त हैं। उनके सुख-दु:ख और संवेदनशीलता के क्षणों में मैं उनके साथ होता हूं। इतना कहकर पंडितजी खिलखिलाकर हंस पड़े।

आगंतुक पंडितजी के इस मर्मस्पर्शी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुआ।

हमने देखा है....

डिग्री से डॉक्टर बनता है, इनसान नहीं

स्मृति ईरानी

भारत की राजधानी दिल्ली में आयोजित जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय के 8वें दीक्षांत समारोह में भारत की केंद्रीय शिक्षामंत्री स्मृति ईरानीजी ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में एक सत्य घटना का उल्लेख किया, जिसे सुनकर सभी श्रोतागण स्तब्ध रह गए। दिल दहलाने वाला आंखों देखा भ्रूणहत्या का भयावह यह प्रसंग आज के युग की सबसे बड़ी चुनौती है। जिसकी बदसूरती मिटाने में हर व्यक्ति का जागना जरूरी है। क्योंकि समाज में भ्रूणहत्या जैसी भयावह स्थिति नासूर की तरह सामाजिक और पारिवारिक सुखों पर प्रश्नचिह्न लगा रही है और मानवीय मूल्यों का ह्रास कर रही है।

आचार्य महाश्रमणजी के सान्निध्य में बड़ी संवेदनशीलता के साथ एक प्रसंग सुनाते हुए ईरानीजी ने कहा—अभी मैं जिस मीटिंग से आ रही हूं, उसमें चर्चा का विषय था—कैसे विद्या के प्रांगण में बच्चों का शोषण रोकें? महिला के साथ दुर्व्यवहार विद्या के प्रांगण में हो, चाहे राजधानी में या फिर किसी प्रदेश की सड़क पर। वहां पर इस प्रकार होना चिंता का विषय है। मैंने चरित्र का पतन एक ऐसे व्यक्ति में देखा जो कहने में तो पीएच.डी., एम.बी.बी.एस. होल्डर था, पर वह शिक्षित कितना था, मुझे ज्ञात नहीं।

महाराष्ट्र में बीड़ नाम का जिला है। वह जिला विख्यात इसलिए भी हुआ कि वहां एक ऐसा डॉक्टर था, जो मां के गर्भ में ही बच्ची को मार देता था। उस डॉक्टर के बारे में पुलिस कोई कार्यवाही नहीं कर सकी। पुलिस के पास जाकर पत्रकार जब प्रश्न करते तो एक ही उत्तर मिलता कि उसके खिलाफ कोई सबूत नहीं है, और कानून में जब तक सबूत नहीं मिलता, कोई न्याय नहीं होता—ऐसा पत्रकारों को कहा जाता और ऐसा ही आक्रोशित बहिनों को जवाब दिया जाता।

एक दिन एक पत्रकार महिला अपनी गर्भवती सहेली के साथ उसकी क्लीनिक में जाती है और डॉक्टर से अपना अन्डर कवर इंवेस्टीगेशन करने के लिए कहती है। डॉक्टर साहब, मेरी सहेली के पेट में शायद बच्ची पल रही है, तो क्या आप उसकी हत्या करेंगे? डॉक्टर मुसकराकर कहता है कि आप तीन हजार रुपए दे दीजिए, आपको आपकी परेशानी से मुक्त कर दूंगा। इस महिला ने पूछा—डॉक्टर साहब, ऐसे कितने केसेज अब तक आपने हेंडल कर लिए होंगे? डॉक्टर ने बड़े गर्व के साथ कहा—दो-तीन हजार तो हो चुके होंगे। वह अपनी मार्केटिंग कर रहा था। महिला ने कहा—क्या कभी किसी ने आपके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की? आपको भय नहीं लगता? तब डॉक्टर बोला—मैंने मेरे क्लीनिक में ही पूरा इंतजाम कर रखा है। मुसकराता हुआ भीतर गया, उसने कमरे का दरवाजा खोला और कहा—झांककर देखिए, मेरा इंतजाम कितना बढिया है। महिलाओं ने अंदर झांककर देखा तो वहां दो कुत्ते बंधे थे। डॉक्टर बोला—मैं मां के गर्भ से बिटिया का अंश निकालता हूं तो कुत्तों को खिला देता हूं।

जब मैंने यह कहानी सुनी तो मुझे लगा कि जिस संस्थान से डॉक्टर को डिग्री मिली थी, उस संस्थान ने डिग्री देकर उसे डॉक्टर तो बना दिया, पर इनसान बनाना भूल गया। इसीलिए विद्यार्थियों से कहना चाहूंगी कि मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूक रहने का संकल्प लेकर उसकी गरिमा को सुरक्षित रखोगे, तभी समाज और परिवार के प्रति हमारा सच्चा योगदान होगा।

हमने सुना है....

तीन लाख रु. की तीन बातें

डॉ. साध्वी ललितरेखा (खाटू)

भरत नाम का एक बहुत ही प्रजावत्सल, धार्मिक और दानवीर राजा था। एक दिन उसके नगर में घूमता हुआ एक महात्मा आया। उसने शहर में किसी के यहां भोजन न करके राजा के यहां भोजन किया। तीन समय भोजन करके तीन लाख रु. मूल्य की तीन बातें बताई। सदा याद रखने के लिए कह कर चला गया। ये तीन बातें थीं–

1. प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में उठा करो।

2. आये का आदर करो।

3. क्रोध के समय शांति रखो।

उस दिन से राजा इन्हें अपने व्यवहार में ले आया। एक दिन राजा ब्रह्म मुहूर्त में उठकर घूमने को गया। उस अंधेरे में ही आकाश की ओर उसे एक विशालकाय स्त्री नजर आयी जो कि आंखों से आंसू बहा रही थी। साश्चर्य राजा ने पूछा–'तुम कौन हो तथा क्यों रो रही हो?' वह बोली–'मैं लक्ष्मी हूं। कल इस शहर का राजा मर जायेगा। उस सामने वाले पर्वत से एक सांप आयेगा, वह राजा को सूर्य डूबने से पहले डस जायेगा। इसलिए मैं रो रही हूं। ऐसा भला राजा फिर कहां मिलेगा।

राजा बात सुनकर चिंतित हुआ। दूसरे दिन मंत्रिगण से मंत्रणा की। मंत्रियों में किसी ने भ्रम समझा तो किसी ने स्वप्न। पर राजा को विश्वास था, बात सत्य होनी चाहिये। अब उसे जल्दी उठने का लाभ सामने दिख आया। भला मृत्यु के दो दिन पहले ही पता लग गया। राजा के कोई लड़का नहीं था। एक लड़की युवती अवश्य थी। इसलिए राजा ने निर्णय दिया–यदि ऐसी स्थिति आ ही गई तो लड़की को पुरुषवेश में सिंहासन पर बिठा देना। विवाह के बाद यदि वर योग्य हो तो उसे राज्य सौंपना अथवा फिर जिसे प्रजा उचित समझे वैसा करे। महाराज ने रानी को सारी बात कह दी और अपनी लड़की को पुरुषवेश में सजाने हेतु सजग भी कर दिया।

सहसा राजा के मन में दूसरी बात आयी–आये का आदर करो। सांप का भी स्वागत करके तो देखो। यही सोचकर पहाड़ से राज-उद्यान तक सुगंधित फूल बिछवा दिये। रास्ते में स्थान-स्थान पर दूध से भरे कटोरे रखवा दिये। उद्यान में स्वयं भी कुर्सी पर आ जमा। सायंकाल सूर्य डूबते-डूबते एक नाग फुफकार कर चला। मार्ग की सजावट व सुगंध से बहुत प्रभावित हुआ।

दूध-पीता, रेंगता हुआ जब राजा के पास पहुंचा तब राजा ने अपना पैर आगे बढ़ाते हुए कहा–'नागदेवता! आप अपना कार्य कीजिये।' कहते हैं कि तब नागदेव मनुष्य की वाणी में बोला–'राजन! मैं तेरे स्वागत से बहुत प्रभावित हुआ हूं, कुछ मांगो।' राजा ने कहा–'आपकी कृपा से मुझे सबकुछ मिला है। मुझे कुछ नहीं चाहिये।' तब सांप बोला–'तो लो तुम्हारी मौत मैं मरता हूं।' यों कहकर लेट गया और निर्जीव हो गया। यह 'आये का आदर' करने वाली बात का प्रत्यक्ष फल था।

राजा बहुत प्रसन्न हुआ और महलों में गया। वहां देखा, रानी किसी पुरुष से आलिंगन कर रही है। राजा अवाक् रह गया। यह क्या! वह बहुत गुस्से में आ गया, सोचा अभी तो मैं जीवित हूं, तभी इसका यह हाल है, मेरे मरने के बाद में यह न जाने क्या-क्या करेगी? यों सोचकर तलवार निकालकर रानी की ओर लपकना चाहा, इतने में उसे याद आयी तीसरी बात–'क्रोध के समय शांति रखो।'

बस! तलवार हाथ में ही रह गई। जब सारी बात का भेद खुला तब राजा को पता लगा कि यह तो उस की पुत्री है, पुरुषवेश में सजा कर, राजा बनाने के लिए तैयार किया गया है। राजा ने तीनों बातों को बहुत लाभकारी माना।

आरोहण के क्षणों में राजकुमार नेमि

मुनि सुखलाल

बदलाव संभव है, यदि भीतर से मन जाग जाए। क्योंकि जागने के लिए सिर्फ एक घटना-प्रसंग चाहिए। जन्म-जन्मांतरों से पड़ी परतें न जाने कब उतरने लग जाए और कब हमारा चैतन्य जाग जाए, हमें खुद पता नहीं लगता। ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया से जुड़े राजवैभव के गलियारों में खेलते राजकुमार नेमि के यौवन की दहलीज पर चढ़ते ही अचानक वैचारिक मोड़ आया और वे राजकुमार से कब संन्यस्त नेमि बन गए, उन्हें खुद को भी पता नहीं चला। चेतना के ऊर्ध्वारोहण के सफर में ऐसा ही होता है, जो जीवन की संपूर्ण व्याख्या कर जाता है।

राजकुमार नेमि ने जब अपने ही आईने में स्वयं को देखना शुरू किया तो उन्हें हर चेहरे पर एक नया सवाल टंगा मिला। कितना क्षणभंगुर है यह संसार का वैभव। कितना दुःखदायी है इंद्रियों का भोग। जन्म और मृत्यु की मीमांसा में सामने आ खड़े हुए प्रश्न- मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? कहां जाना है? शरीर शाश्वत है या आत्मा? इन्हीं प्रश्नों की भीड़ में उन्हें सत्य का दर्शन हुआ और चल पड़े उस गंतव्य की ओर जहां अक्षय सुख मिलता है। राग से विराग की ओर किए गए प्रस्थान की मुनि श्री सुखलालजी ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा से जो सर्जना की है, वो वास्तव में महाकाव्य की महनीयता प्रकट करती है। इस महाकाव्य को समाधिस्थ चित्त का प्रणयन कहा जा सकता है। इसमें ऊर्ध्वारोहण की संपूर्ण गीता का प्रतिबोध भरा है। अनुभूतियों से भावित काव्य संरचना का हर शब्द, अर्थ, भाव विकास की ऋचाएं उकेरता हुआ सा पाठक को प्रतीत होता है।

समुद्रविजय का यह आवास,
बांटता है सबको उल्लास।
किंतु छत पर श्री नेमिकुमार,
कर रहे हैं कुछ गूढ़ विचार।

देखकर अस्ताचल की ओर,
हो रहे हैं अतिभाव-विभोर।
स्वयं बह चलता चिंतन-स्रोत,
डूबता देख सूर्य का पोत।

सृष्टि का कैसा यह विस्तार,
दीखता कहीं न इसका पार।
शून्य का अंतहीन संस्तार,
घूमता क्यों रवि वक्राकार?

नक्षत्र भी घूम-घूम कर गोल,
रच रहे एक अगम्य खगोल।
लग रही है यह कैसी होड़,
कठिन कर पाना सही निचोड़।

हवाएं हैं कितनी उद्दाम,
कहां है इनका अपना धाम?
कौन करता इनको गतिमान,
कौन देता इनको आस्थान।

कहां से आते हैं ये प्राण?
देह का करते हैं जो त्राण।
कहां से बिखर रहा उद्योत,
कहां है अंधकार का स्रोत?

धुरी है संसृति की कौन?
कौन है मुख्य, कौन है गौण?
अगम है यह सारा संसार,
कठिन है पाना इसका पार।

विरल है अणुओं का समवाय,
बदलते क्षण-क्षण में पर्याय।
रूप-रस-गंध-शब्द-संस्पर्श,
कठिन कर पाना सही विमर्श।

धरा भी एक रहस्य अपार,
कौन देता इसको आधार।
कहीं है पर्वत श्रेणी अगम्य,
कहीं फैला है सागर रम्य।

कहीं है ठोस, कहीं है तरल,
कहीं है विषम, कहीं है सरल।
बड़ा यह उलझा हुआ सवाल,
सत्य का कैसा मायाजाल?

काल का ही है या यह गणित,
चराचर इससे ही संगणित?
मनुज क्या सिर्फ काल का दास,
सभी कुछ सहता मौन-उदास।

नियति का क्या यह सारा खेल?
उसी की क्या सब धक्कमपेल?
घटित होती घटनाएं सर्व,
उसी के अनुचर नर-गंधर्व।

वस्तु का या अपना गुण-धर्म?
उसी से संचालित दु:ख शर्म।
या कि है कर्म-प्रधान समस्त,
उसी से निर्मित अथवा ध्वस्त?

सत्य सविचार या कि अविचार,
सोचना सार या कि निस्सार?
वस्तु का है अपना अस्तित्व,
या कि है दृश्य मात्र व्यक्तित्व?

करूं मैं अरे! विश्व की बात,
किंतु देखूं पहले निज गात।
न जड़ से चेतन का उद्भव,
असत् का कभी न प्रादुर्भाव।

पांच भूतों का ही समवाय,
न केवल है मेरी यह काय।
भिन्न है दोनों के गुण-धर्म,
जोड़ता है दोनों को कर्म।

'शिवा' मां का मैं हूं तनुजात,
विदित है 'श्री समुद' मुझ तात।
सिर्फ क्या गुण-सूत्रों का खेल?
अगम के हाथों थमी नकेल।

वंश की भी है लंबी डोर,
दीखता कहीं न उसका छोर।
स्थूल तो दीख रहा है स्पष्ट,
किंतु है सूक्ष्म अतीव अदृष्ट।

इंद्रियां पांच मिली अविकार,
चेतनामय मस्तिष्क उदार।
ग्रंथियों का अनुपम संस्थान,
तंत्रिकाओं का वित वितान।

जटिल है बड़ा कोशिका-जाल,
केशिकाओं का काम कमाल।
सप्त धातुओं का संघात,
मनुज भव मुझे हुआ है प्राप्त।

कहां से आया हूं मैं यहां,
यहां से जाना और कहां?
निहारूं मैं अपना ही स्वत्व,
तभी पाऊंगा असली तत्त्व।

कहां से उपज रहा यह तर्क,
कौन करता है पुन: वितर्क?
शरीर तो है जड़ का परिपाक,
चेतना चला रही है चाक।

मनन है यद्यपि मन:प्रसूत,
किंतु यह भी पुद्गल का पूत।
मनोवर्गणा का विस्तार,
मनन का बनता है आधार।

तरंगायित सारा संसार,
प्रस्फुटित उससे विविध विचार।
चेतना है चित् तत्त्व अनूप,
जीव का अपना शुद्ध स्वरूप।

ज्ञेय है यदि सारा संसार,
नियत ज्ञाता होगा अविकार।
चेतना पर है जो आवरण,
ज्ञान का करता है संवरण।

उसी से उपज रहा है काम,
वासनाएं बनती उद्दाम।
खुली है नई ज्ञान की राह,
मुझे पानी है अपनी थाह।

अभी तक तो तन ही था ज्ञात,
इसी से करता था मैं बात।
किंतु लगता है इसके पार,
चेतना का विस्तृत संसार।

करूं मैं अपने से साक्षात्,
सभी हो जायेगा विज्ञात।
तनावों से मानव है त्रस्त,
चेतना हो जाती संत्रस्त।

आत्मगत है आनंद-प्रवाह,
यही है निज स्वरूप की राह।
द्वैत है द्वंद्व-दु:ख का मूल,
उसी से चुभते पग में शूल।

इंद्रियों का सुख है क्षणकाम,
न लगता उस पर पूर्णविराम।
समझना चेतन का अनुभाव,
देखना अपना स्वत्व स्वभाव।

भले यह बहुत कठिन है कार्य,
किंतु मुझको करना अनिवार्य।
इंद्रियों का आकर्षण रम्य,
वस्तुत: है अति ही दुर्दम्य।

इसी से चंचल होता चित,
स्खलन का बन जाता है वृत्त।
उसी से होता मन उद्दीप्त,
मनुज बन जाता है विक्षिप्त।

भोग है खुजली के अनुहार,
विकट बन जाती यह मनुहार।
न आ पाता फिर इसका अंत,
कामनाओं का व्योम अनंत।

देह का है अपना उपयोग,
एक है भोग, दूसरा योग।
भोग है अध:पतन की राह,
योग है ऊर्ध्वगमन की चाह।

सीढ़ियां केवल मात्र निमित्त,
उतरना-चढ़ना अपना वृत्त।
तमस् का करना है अब नाश,
लक्ष्य है मेरा आत्म-प्रकाश।

सजग बन देखूं मन के स्पंद,
बन सकूं जिससे मैं नि:स्पंद।
विकल्पों से पाना अब मुक्ति,
यही है बस मेरी अनुरक्ति।

आज उगा है पुण्य प्रभात,
बीत चुकी है काली रात।
जगाना है अब अपना शौर्य,
अतीत का पथिक बना कैशोर्य।

सुदृढ़ है मेरा यह मंतव्य,
सुनिश्चित है मेरा गंतव्य।
शुरू है मेरा अब अभियान,
मुझे करना अपना संधान।

सहजता से शरीर को साध,
प्राण को देखूंगा निर्बाध।
जहां है पवन वहां है मनन,
जहां है मनन वहां है पवन।

श्वास ही है जीवन की आदि,
श्वास ही है जीवन की आधि।
श्वास ही है जीवन की व्याधि,
श्वास से ही संप्राप्य समाधि।

श्वास ही चंचलता का हेतु,
श्वास ही निर्मलता का सेतु।
यही है आनापानसती,
संयमित बनता स्वयं व्रती।

मौन है सबसे बड़ा उपाय,
उसी से होंगे रुद्ध अपाय।
अजब है संस्कारों की देन,
नहीं लेने देती वह चैन।

गुजरता कहां-कहां से जीव,
समझ पाना है कठिन अतीव।
ग्रहण करता नव-नव संस्कार,
बंद करना अब उनके द्वार।

अलख है अवचेतन का तंत्र,
चेतना बन जाती परतंत्र।
उसी का करना है उच्छेद,
स्वयं से स्थापित कर अविभेद।

मुंद गए हैं दोनों ही नयन,
दीखने लगा आंतरिक अयन।
नया चिन्मयता का संसार,
स्वयं में जाग उठा अविकार।

मिट गए तन के तरल तनाव,
नीर में सहज तैरती नाव।
हो गया खुद ही कायोत्सर्ग,
जग गया अपना स्वयं निसर्ग।

जागता है जब आत्म-विवेक,
स्वयं शम का होता अभिषेक।
तीव्रतम रहता नहीं लगाव,
तीव्रतम नहीं कहीं अलगाव।

सभी के प्रति समता का भाव,
न टिक पाता है विषम विभाव।
राग का हो जाता जब रोध,
द्वेष का होता स्वयं निरोध।

राग से जब विराग की ओर,
शुरू हो जाता मन का दौर।
जागता है तब ही संवेग,
इंद्रियों के मिटते आवेग।

मुक्ति का होता जब आभास,
स्वयं मिट जाती पुद्गल प्यास।
उतरता अनायास वैराग्य,
जाग जाता है सोया भाग्य।

सभी पर अनुकंपा का भाव,
यही सम्यक्त्व-सुधा का स्राव।
कारणों का होता संधान,
कार्य का मिट जाता व्यवधान।

इधर होता है सविता अस्त, उधर नेमी बनते आत्मस्थ।
आ रहे शिवा-समुद मां-बाप, शुभाशय करते हैं संलाप।

विशेष–जिज्ञासु पाठक मुनिश्री द्वारा लिखित महाकाव्य **ऊर्ध्वारोहण** में नेमि-राजुल का संपूर्ण चरित्त पढ़ सकते हैं।

समाधान की पदचाप

प्रबंधन के पांच सूत्र–

1. **स्व प्रबंधन**
2. **लक्ष्य का निर्धारण**
3. **दृढ़ संकल्प**
4. **अनुशासन**
5. **समर्पण**

1957 में अमरीकी टेलीविजन पर एक विज्ञापन दिखाया गया था, जिसमें एक मध्यमवर्गीय गृहिणी अपना चिड़चिड़ापन और क्रोध अपने पति और बच्चों पर अभिव्यक्त करती हुई दरसायी गयी थी। यह विज्ञापन पेश किया गया था नव आविष्कृत दवा 'एनासिन' के निर्माताओं की ओर से। 'एनासिन' लेने के बाद वह महिला प्रेमपूर्ण और मैत्रीपूर्ण व्यवहार वाली दिखाई गयी। इस विज्ञापन के साथ ही लोग नए रोग 'तनाव' से परिचित हुए और उसके प्रति जागरूक हुए।

समय के साथ-साथ हमारे जीवन में प्रोजेक, वेलियम एवं अन्य शक्तिशाली तनाव रोधक दवाएं प्रवेश करती चली गई। औषध उद्योग की रिपोर्ट के अनुसार पिछले वर्ष हलके तनाव से निजात पाने के लिए ग्यारह मिलियन पौंड एस्पिरीन का विक्रय हुआ। तनावमुक्ति के लिए प्रतिवर्ष सत्तर खरब गोलियां पूरे विश्व में बेची जाती हैं। ये आंकड़े आधुनिक विकास पर प्रश्नचिह्न हैं। विभिन्न व्यवसाय में संलग्न विशेषज्ञों एवं उच्चपदाधिकारियों का सर्वे किया गया। सर्वे में पाया गया कि इन सभी लोगों में लगभग दो-तिहाई लोग गहन तनाव से ग्रसित रहते हैं।

आज विश्व भर के लोग तनाव के उपचार के लिए 3 से 4 अरब डॉलर प्रतिमाह खर्च कर रहे हैं। फिर भी समस्या का छोर अदृश्य है। इंटरनेट और खुलापन के इस युग में भौतिक संसाधनों में उलझा मानव तनाव से मुक्ति पाने के लिए अनेक उपायों की तलाश कर रहा है किंतु वह यह नहीं जानता कि समस्या का मूल समाधान कहीं बाहर नहीं, भीतर ही है। उसके स्व-प्रबंधन का अर्थ है स्वयं के प्रति जागरूक होना। होशपूर्वक जीना। स्व-प्रबंधन जीवन की सबसे बड़ी पूंजी है। जो इसको प्राप्त कर लेता है, जागरूक जीवन जीता है वह अपनी प्रत्येक समस्या का समाधान खुद पा लेता है। उसके जीवन में आने वाली तनाव जैसी अनेक समस्याएं किनारे पर लगी नाव की तरह ठहर जाती हैं। स्व-प्रबंधक का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–**खुद के खुदा खुद बनो, समस्याओं से निजात पाने के लिए खुदा से मनौती मत करो।**

स्व-प्रबंधन का केंद्र बिंदु है–स्वयं के प्रति जागरूक होना। स्व-प्रबंधन अध्यात्म का आधुनिक संस्करण है। व्यक्तित्व विकास की एक नई शाखा है। आध्यात्मिक विकास का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–स्व-प्रबंधन। भगवान महावीर बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक थे। आपने कहा–

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुजंतो भासंतो, पाव कम्मं न बंधई।।

मेरी दृष्टि से स्व-प्रबंधन का इससे अच्छा कोई सूत्र हो सकता है, खोजना होगा। महावीर ने जो बात हजारों वर्ष पूर्व कही मनोवैज्ञानिक उसी बात को आंशिक रूप में स्व-प्रबंधन की शाखा के माध्यम से कह रहे हैं।

Personal Management नामक पुस्तक में कहा गया है कि 'स्व-प्रबंधन' की धुरी दूसरे पर नहीं, स्वयं पर आधारित है। स्व-प्रबंधन करने वाला अपने जीवन में एक के बाद एक विकास की कड़ियां जोड़ता चला जाता है। आखिर क्यों? क्या आपने कभी सोचा, इसका रहस्य क्या हो सकता है? यदि नहीं, तो इन रहस्यों के बारे में सोचिए, जानिए और जीवन में अपनाइए। आपको अपने चारों ओर सफलता के भ्रमर मंडराते नजर आएंगे।

स्व-प्रबंधन व्यक्ति को सुप्त या जागृत अवस्था में एक आवाज देता है कि आपकी जरूरतें आप बेहतर जानते हैं। आपकी समस्याएं आपसे बेहतर कोई नहीं जानता। उनसे निजात पाने के रास्ते क्या हो सकते हैं? यह भी आपसे अच्छा कोई नहीं जान सकता। स्व-प्रबंधक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए समय पर लक्ष्य का निर्धारण करता है। वह देखेंगे, सोचेंगे, करेंगे, इसमें समय को बर्बाद नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि 'डगमग' प्रकृति के कारण शानदार से शानदार मस्तिष्क का भी नाश हो जाता है।

लक्ष्य का निर्धारण—लक्ष्य का निर्धारण निराशा से भरे लोगों में प्राण शक्ति भर देता है। किंतु हमारा लक्ष्य रेडीमेड शर्ट की तरह बना-बनाया, पका-पकाया, चुना-चुनाया और बुना-बुनाया नहीं होना चाहिए। लक्ष्य हमेशा अपनी समस्याओं से निजात पाने के लिए उनके अनुकूल होने चाहिए। स्व-प्रबंधक के लक्ष्य अपनी क्षमता, खासीयत, खास समस्या के मुताबिक खास ढंग के होते हैं। जो व्यक्ति देखा-देखी लक्ष्यों का निर्धारण करता है, वह आर्थर बैरी की तरह अपनी चोरी खुद कर लेता है।

आर्थर बैरी बहुत बड़ा डकैत था। एक बार वह डकैती के दौरान पकड़ा गया। उसे अत्यधिक यातनाएं दी गईं। उसकी आंखों में काच का बुरादा डाला गया और आजीवन कारावास की सजा दी गई। इसे एक चमत्कार ही मानना चाहिए कि कड़ी सुरक्षा के बावजूद बैरी जेल के सीखचों से समय से पूर्व ही निकल आया। लोगों ने आर्थर बैरी से पूछा—महाशय! आपने अपने जीवन में सबसे बड़ी चोरी किसकी की? और क्यों की? बैरी ने कहा—यह तो बहुत सीधा-सा सवाल है। मैंने अपने जीवन में सबसे अधिक चोरी जिस व्यक्ति की, उसका नाम भी आर्थर बैरी! क्योंकि मैंने अपनी जवानी का दो-तिहाई भाग जेल की सलाखों में काट दिया, जो मेरे जीवन का अमूल्य समय था। इससे बड़ी चोरी और क्या हो सकती है? ऐसा मैंने इसलिए किया क्योंकि मैंने अपने जीवन का लक्ष्य विवेकपूर्वक नहीं बनाया। येन-केन-प्रकारेण धन प्राप्त करने की मनोवृत्ति ने मेरे जीवन का सबकुछ तबाह कर दिया।

बैरी स्व-प्रबंधक नहीं था, इसलिए उसने ना कुछ पाने के लिए सब कुछ खो दिया। इसके विपरीत स्व-प्रबंधक का विवेकपूर्वक किया गया सम्यक लक्ष्य प्राकृतिक झरने के पवित्र पानी की तरह होता है जिससे अभिस्नात हो व्यक्ति समस्याओं की ऊमस भरी चिपचिपाहट को दूर कर सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार-'लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जिस शक्ति और सहायता की जरूरत है, वह तुम्हारे भीतर है।'

दृढ़ संकल्प—दृढ़ संकल्प शेख-चिल्ली के 'सपनों की तरह नहीं है और न ही कल्पना की उड़ान है। यह मानसिक शक्तियों का रचनात्मक उपयोग है। दृढ़ संकल्प असंभव कार्य को भी संभव बना देता है। किसी ने सिकंदर से पूछा—तुम विश्व विजेता कैसे बने? सिकंदर ने कहा—'मैं विश्व विजेता नहीं बना, मेरे संकल्प ने मुझे विश्व विजेता बना दिया।' लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प मानव-मस्तिष्क में उत्पन्न एक ऐसा चमत्कार है जो कल्पवृक्ष की तरह है। लक्ष्य चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो, दृढ़ संकल्पी व्यक्ति उसे प्राप्त करके ही विश्राम लेता है। किसी ने ठीक ही कहा है—'जिसका संकल्प फौलादी होता है, संसार उसे आगे बढ़ने के लिए रास्ता दे देता है।' कहने का तात्पर्य है दृढ़ संकल्प के द्वारा भाग्य का बंद दरवाजा खोला जा सकता है।

अनुशासन—वर्तमान जीवनशैली के ये तीन सूत्र—मन के अनुसार चलो। इच्छाओं पर लगाम मत लगाओ।

इंद्रियों का संयम मत करो–तात्कालिक और तथाकथित सुख देने वाले हैं। परिणामभद्र नहीं, आपातभद्र हैं। यह शैली भोग और योग का संतुलन न करने से रोग पैदा करने वाली है। मुझे पता नहीं, आप इस बात से वाकिफ हैं या नहीं किंतु मैंने पढ़ा है कि फ्लोरिडा में सड़कों पर ऐसी मशीनें लगी हुई हैं, जिन पर यह लिखा होता है कि आपका ब्लड प्रेशर क्या है? आप मशीन के छेद में सिक्का डालकर इसका ज्ञान कर सकते हैं। उस देश की जनता की स्थिति की कल्पना कीजिए जहां प्रेशर की मशीनें ठंडे पानी की मशीनों की तरह सड़कों पर आ गई हैं।

दूसरी ओर अमेरिका में अस्पताल का हर दूसरा बिस्तर एक ऐसे मरीज से भरा हुआ है जो किसी ऐक्सिडेंट, वाइरस या अन्य बीमारी के कारण अस्पताल में भरती नहीं है बल्कि इसलिए है कि उन्होंने अपनी भावनाओं को अनुशासित और व्यवस्थित नहीं किया। बिना अनुशासन के शरीर का मेंटेन-रख रखाव नहीं रह सकता तब मानसिक और भावनात्मक स्वस्थता का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

कहा जाता है हथौड़े की चोट शीशे को तोड़ देती है किंतु लोहे को फौलाद बना देती है, यह अनुशासन का ही चमत्कार मानना चाहिए कि पत्थर भी भगवान के रूप में पूजा प्रतिष्ठा पाता है। पत्थर पर जब शिल्पकार की कलात्मक व अनुशासनयुक्त छेनी और हथौड़ा चलता है तब वह मूरत बन जन-जन के लिए पूजनीय बन जाता है। वैसे ही जो मनुष्य अनुशासन को अंगीकार करता है, उसे सहन करता है वह मूरत की तरह सर्वत्र पूजनीय बन जाता है।

व्यक्ति विकास से लेकर समूह विकास की प्रक्रिया में इसका अभूतपूर्व योगदान है। किंतु आज का जनमानस उस बच्चे की तरह है जो अनुशासन को विकास का आधार न मानकर बंधन मानता है। एक बच्चे ने पतंग उड़ाते हुए अपने पापा से पूछा, पापा! पतंग आकाश में इतनी ऊपर कैसे उड़ती रहती है! पापा ने जवाब दिया–बेटा! डोरी से बंधे रहने के कारण। बच्चे ने कहा–पापा! ऐसा नहीं है? आप ठीक नहीं समझ रहे हैं। यह डोरी ही तो है जो पतंग को ऊपर जाने से रोक रही है। पापा ने बच्चे को यथार्थ बोध कराते हुए कहा–देखो,अब मैं इस डोरी के बंधन से पतंग को मुक्त कर रहा हूं। तुम देखना पतंग ऊपर जाएगी या नीचे आएगी। हमारे जीवन में भी ऐसा ही होता है।

अनुशासन की डोर से बंधा पतंग आकाश की ऊंची उड़ान भरता है और डोर से छूटकर जमीन पर आ गिरता है वैसे ही जीवन भी अनुशासन की डोर से बंधकर ही ऊंचाई को प्राप्त करता है। अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में–अनुशासन को महत्त्व दो, उसे बंधन नहीं आत्मानुशासन-विकास का मार्ग मानो।

समर्पण–अगरबत्ती में सुवास व फूल में सुगंध की तरह समर्पण लक्ष्य के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। केवल लक्ष्य का निर्धारण पेट्रोल रहित कार व ईंधन रहित राकेट की तरह है। जिसके बिना लक्ष्य की दिशा में गति नहीं हो सकती। क्या गति करे बिना कभी कोई मंजिल प्राप्त कर सका है?

समर्पण में तर्क नहीं होता। यद्यपि तर्क के द्वारा व्यक्ति बहुत कुछ जान सकता है किंतु सब कुछ नहीं। तर्कशील व्यक्ति यह तो बता सकता है कि एक सेव में कितने बीज हैं, किंतु यह नहीं बता सकता कि एक बीज से कितने सेव उत्पन्न होंगे। समर्पित व्यक्ति को अपना लक्ष्य दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगता है। समर्पण से लक्ष्य के प्रति अभिन्नता, एकात्मता और तादात्म्य-भाव स्थापित हो जाता है।

गुब्बारे कितने बड़े हैं, कितने सुंदर हैं और कितनी संख्या में हैं? इसका अपना महत्त्व है, किंतु उन्हीं गुब्बारों में यदि हवा भर दी जाए तो वे आकाश में ऊंची उड़ान भरने का सामर्थ्य रखते हैं, वैसे ही हमारे लक्ष्य कितने बड़े और सुंदर हैं? इनका भी अपना महत्त्व है, किंतु समर्पण की हवा भरे बिना वे गुब्बारे की तरह जीवन में ऊंचाई को प्राप्त नहीं कर सकते। स्व-प्रबंधक इस बात को समझता है कि बाह्य सौंदर्य का जितना महत्त्व है, उससे कई गुना अधिक आंतरिक सौंदर्य का महत्त्व है। जिससे व्यक्ति अमाप्य ऊंचाई को प्राप्त करता है। ❑

वैचारिक सफरनामा अर्थशास्त्र के आस-पास

साध्वी कल्पलता

(अर्थशास्त्र से जुड़ी कई धारणाओं के संदर्भ में लिए गए इंटरव्यू का अंश)

1. जिज्ञासा—सीमित संसाधनों और असीमित आकांक्षाओं के संदर्भ में संतोष के अर्थशास्त्र और संयम के विचारों की व्याख्या करें और उनके परस्पर संबंधों पर प्रकाश डालें।

समाधान—संसाधन सीमित है या असीमित, आकांक्षा का संसार उस पर मुहताज नहीं रहता। असीमित संसाधन वाला राजा/नेता या व्यक्ति संन्यासी मनोवृत्ति में अत्यल्प इच्छा या आकांक्षा के साथ जी सकता है। एक झुग्गी झोंपड़ी में बैठा, चिथड़ों में लिपटा गरीब आदमी समूचे संसार को खरीदने की आकांक्षा पाल सकता है। कवि की निम्न पंक्तियां इसी सचाई को व्यक्त करती हैं—

सांसों की सीमा निश्चित है, इच्छाओं का अंत नहीं है।
जिसकी कोई चाह नहीं हो, ऐसा कोई संत नहीं हैं।।

एक संत की इच्छा, आकांक्षा या चाह प्रशस्त हो सकती है, पर आकांक्षा का अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता। ऐसा वीतराग अवस्था में ही संभव है। अर्थ का शास्त्र हमेशा आवश्यकता और आकांक्षा की स्याही से ही लिखा जाता है। जबकि संतोष का अर्थशास्त्र संयम की वर्णमाला पर आधारित है। यह व्यवहार की धरती पर तभी फल फूल सकता है जब व्यक्ति आवश्यकता के धरातल पर खड़ा रहे और स्वस्थ संतुलित जीवनशैली जीने का संकल्प ले। यह संकल्प गरीबी की विवशता, अभिशाप, संपन्नता की स्ववशता में विलासिता पर विजयी बनने का वरदान है। अर्थार्जन का लक्ष्य सुख, शांति और आनंद बना लिया जाए तो धरती पर न कोई भूखा रहेगा, न कोई बेघर रहेगा, न वस्त्र विहीन रहेगा, न अशिक्षित रहेगा और न कोई चिकित्सा के अभाव में मरेगा। यह आवश्यकता और आकांक्षा के बीच अंतर समझने वाला विज्ञ ही कर सकेगा। फिर संतोष का अमृत हमारी भावना के साथ खून की बूंद-बूंद में समा जाएगा।

2. जिज्ञासा—भारत में अमीर-गरीब के अंतर को आप कैसे व्याख्यायित करते हैं?

समाधान—अमीर-गरीब का हर देश में सहावस्थान है। भारत में ही अमीर और गरीब का अंतर है, कहना न्याय-संगत कम लगता है। समूची दुनिया में सतहत्तर प्रतिशत से अधिक लोग गरीब हैं। वे सब देशों में प्रवासी हैं। प्रतिशत का अंतर हो सकता है। अमीर और गरीब बनना न तो कर्म-कृत है और न ईश्वर प्रदत्त है। व्यक्ति पुरुषार्थ और भाग्य के साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से अमीर और गरीब दोनों बन सकता है। गरीब के भाग्य में गरीबी लिखी है और अमीर के भाग्य में अमीरी'—इस कथन में निराशा/हताशा की बू है। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ, प्रतिभा कौशल और दृढ़ संकल्प से चाहे जितनी संपदा अर्जित कर सकता है, यदि उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुकूल मिल जाएं। उदाहरणार्थ अरब देश हमारे सामने हैं। जब तक पेट्रोल नहीं निकला तब तक वहां गरीबी थी। आज उनकी गणना अमीर देशों में होती है।

सुख गरीबी और अमीरी में नहीं होता, व्यक्ति की मनोवृत्ति में अधिक होता है। एक व्यक्ति अति संपन्नता में भी सुख से कोसों दूर रहता है। एक गरीब व्यक्ति दो रोटी खाकर भी मस्त रहता है और सुख की नींद लेता है। गरीब व्यक्ति अपने आपको नियति के हाथों में न छोड़े। समयज्ञ, उपायज्ञ बनकर सही दिशा में पुरुषार्थ का नियोजन कर आदमी सफलता हासिल कर सकता है।

3. जिज्ञासा—उपभोक्तावाद क्या है? क्या हम उसको नकार सकते हैं?

समाधान—हमारे सामने दो शब्द हैं—उपयोगितावाद और उपभोक्तावाद। जीवन की अनिवार्य अपेक्षा के लिए पदार्थ का खरीदना उपयोगितावाद है। विलासिता, सुविधा और कृत्रिम अपेक्षा से पदार्थो को खरीदने की इच्छा को बढ़ावा देना उपभोक्तावाद है। वर्तमान युग में आर्थिक विकास की दृष्टि से इस उपभोक्तावाद को महत्त्व दिया जा रहा है, पर यह हिंसा को, प्रतिस्पर्धा को, अपराध को और अनैतिकता को बढ़ाने वाला कीटाणु है, जो दीमक बनकर मानवीय मूल्यों को लील सकता है।

इस उपक्रम से आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में —उन्मुक्त उपभोग भूख बन जाती है। भूख के लिए आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है, परंतु उन्मुक्त उपभोग की भूख को पूरा करने के लिए इस दुनिया में न कोई साधन है और न कोई शक्ति है। न आज का अर्थशास्त्री इसे पूरा कर सकेगा। न कोई शासन या वित्तमंत्रालय उन्मुक्त उपभोग की भूख को मिटा सकेगा। इसे नकारा जा सकता है, पर पहले नियंत्रित समाज व्यवस्था, नियंत्रित इच्छा और आवश्यकता की पृष्ठभूमि तैयार करनी होगी।

4. जिज्ञासा—संयम तब ही आचरित हो सकता है, जब उसके पास पर्याप्त या बहुत हो। इसका अर्थ यह है कि जब तक तुम्हारे पास उतना न हो तब तक संयम कार्यकारी नहीं है? संयम की बात क्या धनी लोग, देश और पूंजीवाद के लिए है?

समाधान—संयम का कल्पवृक्ष धनी लोगों के आंगन में ही फलता अथवा धनी देश की धरती पर ही फलवान बनता है, यह वाक्य शाश्वत सचाई से दूर है। वास्तव में संयम का संबंध अमीर-गरीब से नहीं है। इसका संबंध मनुष्य की मनोवृत्ति से है।

लोभ की अभिप्रेरणा ही मानव को अर्थ अर्जन के लिए प्रेरित करती है। ज्यों-ज्यों लाभ मिलता है, लोभ की मनोवृत्ति तीव्र बनती है। जितनी संपन्नता का विस्तार होता है—लालसा, तृष्णा और आकांक्षा का आकाश बढ़ता ही जाता है। यह एक शाश्वत सचाई है। इस दृष्टि से वास्तव में देखा जाए तो एक संपन्न व्यक्ति हर क्षण अधिक पाने की लालसा में दरिद्र-सा बना रहता है। इसके विपरीत एक अल्प अर्थार्जन करने वाला संतोषी व्यक्ति अधिक आत्मबोध का अनुभव करता है। संयम का जीवन जीता है, पर इसका अर्थ यह भी नहीं है कि धनी व्यक्ति संयम की मूल्यवत्ता समझता ही नहीं।

भगवान महावीर के प्रमुख दस श्रावक इसके स्वयंभू प्रमाण हैं। एक ओर आनन्द श्रावक ने संपूर्ण अमीरी में संयम-प्रधान जीवन जीया, तो दूसरी ओर रुई की पूनी कात कर आजीविका चलाने वाला पूणिया श्रावक भी संयम-प्रधान जीवन यापन करता था। भगवान से पूछा

गया कि दोनों में महत्त्व किसका है? भगवान ने उत्तर की भाषा में कहा—अपने-अपने स्थान पर दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। इसका फलित यह है कि जो व्यक्ति अल्पेच्छ है वह भले ही धनी हो या निर्धन संयम की साधना कर सकता है।

5. जिज्ञासा—संयम के अर्थशास्त्र या करुणा के अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं?

समाधान—संयम का अर्थशास्त्र करुणा का अर्थशास्त्र जानने वाला व्यक्ति ही पढ़ सकता है। अर्थशास्त्र की बारीकियों को जानने से पहले भारतीय नीतिशास्त्र में वर्णित पुरुषार्थ चतुष्टयी को जानना आवश्यक है। उसमें दो साध्य हैं और दो साधन हैं। काम और मोक्ष साध्य हैं तथा अर्थ और धर्म दोनों साधन हैं। वर्तमान युग में अर्थ साध्य के आसन पर बैठ गया है। उसे ही सबकुछ मान लेने से अर्थनीति की पवित्रता समाप्त हो चुकी है। अर्थार्जन करने के संदर्भ में अथवा अर्थ की सुरक्षा के लिए अपराध, अनैतिकता और चरित्रहीनता को जो बढ़ावा मिला है, वह वास्तव में ही मनुष्य के नाम पर कलंक है।

यदि अर्थ और काम दो तत्त्व ही जीवन के घटक होते तो नैतिकता, प्रामाणिकता, चरित्र आदि मूल्यों की अपेक्षा ही नहीं होती। लेकिन यह स्पष्ट है कि केवल रोटी और केवल मूल्य दोनों अपर्याप्त हैं। मनुष्य न केवल रोटी के आधार पर जी सकता है और न केवल मूल्यों के आधार पर। जीवनशैली में दोनों का समन्वय आवश्यक है।

अर्थतंत्र के साथ करुणा की चेतना का उदय हो जाए तो सुविधा और विलासिता स्वतः समाप्त हो जाएगी, क्योंकि करुणा का प्रवाह जिस समाज में बहता है वहां शोषण नहीं होगा, अन्याय नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं रहेगा। वहां मानव और मूल्यों का सम्मान होगा। वस्तु/पदार्थ का नहीं, श्रम का मूल्यांकन होगा। एक शब्द में कहा जाए तो करुणा के क्षितिज पर ही सह-अस्तित्व का सूर्योदय होगा। ऐसे मूल्यवान समाज में संयम का प्रकाश लाना नहीं पड़ेगा, स्वतः अवतरित होगा। यदि ये संस्कार अंतर्मन से स्वीकृत हो जाए अथवा मौलिक मनोवृत्ति का स्वरूप ले लें तो कितना ही अर्थसंपन्न व्यक्ति हो, वह उसका अकेला भोग नहीं करेगा। स्वयं की इच्छाओं, सुविधाओं का संयम करते हुए वह दूसरों के उपकार में अर्थ का नियोजन उदारता से करेगा, क्योंकि वह अपनी क्षमता से अर्जित संपत्ति व्यक्ति कल्याण, समाज सुरक्षा और राष्ट्र के हितों में समुचित विभाजित कर सामुदायिक चेतना में जीएगा। ऐसा करने वाला ही मुक्त चेतना का अधिकारी बन सकता है। सर्व कल्याणकारी अवधारणा दीर्घकालिक ही नहीं, शाश्वत और त्रैकालिक होती है।

6. जिज्ञासा—मार्केट मूल्य के अलावा धर्म अर्थशास्त्र को कैसे मूल्य दे सकता है?

समाधान—धर्म अहिंसा/पवित्रता, प्रामाणिकता और नैतिकता के सुदृढ़ खंभों पर खड़ा है। भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त दो सूत्र महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं—

- अर्जन में साधन-शुद्धि का विचार
- व्यक्तिगत जीवन में उपभोग की सीमा

7. जिज्ञासा—प्रचलित उपभोक्तावाद में आपका समाधान कितना न्याय-संगत है?

समाधान—प्रचलित उपभोक्तावाद ने हिंसा, आतंक, अशांति, स्पर्धा, ईर्ष्या और शोषण को निमंत्रण दिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबका स्वास्थ्य रुग्ण बना है। असीम पदार्थों का उन्मुक्त उपभोग अस्वास्थ्य को खुला निमंत्रण है। मानसिक असंतुलन को बढ़ाने वाली अंतहीन प्रतिस्पर्धा है। इन दोनों परिस्थितियों के परिणामस्वरूप मनुष्य के पास सबकुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। दो करोड़ की कार में बैठने वाले श्रीमंत की रात की नींद गायब है, दिन की भूख बंद है, पारस्परिक विश्वास की डोर टूट चुकी है। उसके चारों ओर भय, संदेह के नागफनी कांटे उगे हुए हैं। ऐसी स्थिति में भगवान महावीर द्वारा व्रती समाज की जीवनशैली की उपयोगिता स्वतःप्रमाणित है।

बारह व्रतों वाली यह जीवनशैली व्यक्तिगत स्वामित्व और उपभोग के सीमाकरण के व्याकरण से लिखी हुई है। इसके आधार पर व्यक्ति और राष्ट्र का निर्माण किया गया तो सुख, शांति और स्वस्थता स्वतः

भक्ति की तीन परिणतियां

- आर्द्रता
- कोमलता
- तन्मयता

• **आर्द्रता**-
पानी में पत्थर की तरह,
जिसमें होता केवल
ऊपर से गीला है।

• **कोमलता**-
पानी में वस्त्र की तरह,
जिसमें होता
अन्तर से भी लचीला है।

• **तन्मयता**-
पानी में शक्कर की तरह,
जिसमें पूर्ण-विलीन
बन होता सम रसीला है।

समर्पण के तीन प्रतिष्ठान

- प्रेय के प्रति
- श्रद्धेय के प्रति
- ध्येय के प्रति

प्रेय के प्रति-
स्नेह राग से उत्पन्न होता है।

श्रद्धेय के प्रति-
गुणानुराग से निष्पन्न होता है।

ध्येय के प्रति-
हार्दिक विराग से संपन्न होता है।

–मुनि वत्सराज

अवतरित हो जाएगी। आवश्यकता है अर्थ की डोर को थामने वाले अर्थशास्त्री उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को नया नजरिया दें। मनी पर मॉरल का नियंत्रण करें और विज्ञापनों की सम्मोहक दुनिया से उपभोक्ताओं को भ्रमित करने वाले उपक्रम बंद करें। भगवान महावीर के श्रावक आनन्द, महाशतक, सद्दालपुत्र आदि करोड़ों की संपत्ति के मालिक बनकर भी व्रती जीवन जी सकते हैं, अपनी कामनाओं को सीमित कर सकते हैं, तो आप क्यों नहीं कर सकते। स्वस्थ समाज सरंचना का यह महत्त्वपूर्ण आधार बन सकता है।

8. जिज्ञासा–आप धार्मिक ग्रंथों से कोई कहानी या उदाहरण इस विषय में बताएं।

समाधान–प्रतिष्ठा का, सुविधा का आधार अर्थ बन सकता है, पर सुख का आधार अर्थ ही है, यह धारणा उस मोड़ पर खंडित होती-सी प्रतीत होती है, जहां अमीर भी आर्त होकर, दु:खी होकर जीते हैं। प्रस्तुत है जैन आगम में वर्णित मम्मण श्रेष्ठी की घटना– अकूत संपदा का स्वामी मम्मण सेठ उसका उपयोग नहीं करता था और निरंतर अंतरव्रण से दु:खी रहता था। ऐश्वर्य संपन्न मम्मण एक रात नदी के किनारे लकड़ियां एकत्रित कर रहा था। अंधेरी रात, बादलों की गड़गड़ाहट और बिजलियों की कौंध में उसे देख महारानी चेलणा ने सम्राट श्रेणिक से कहा–आपके राज्य में कैसे-कैसे दरिद्र लोग हैं। सम्राट को आश्चर्य हुआ। अनुचरों को भेजकर उस व्यक्ति को बुलाकर पूछा–तू कौन हैं? इस भयावह रात में इतना श्रम क्यों करता है? आगंतुक बोला–महाराज! आपके राज्य में रहने वाला मैं श्रेष्ठीपुत्र हूं। मेरा नाम मम्मण है। मेरे पास एक बैल है। उसकी जोड़ी तैयार करने के लिए मैं रात-दिन श्रम करता हूं।

राजा ने बैल देखना चाहा, पर श्रेष्ठीपुत्र ने स्पष्ट किया– राजन! आपको ही वहां चलना होगा। सम्राट मम्मण के साथ उसके घर पहुंचे और तलघर में प्रवेश किया, बैल को देखा तो आंखें चुंधिया गई। वहां एक रत्नजड़ित बैल खड़ा था। सम्राट बोला–मूर्ख! इस बैल की जोड़ी बनाने जितना वैभव तो मेरे राज्य के भंडार में भी नहीं है। तू भूखा रहकर, नींद न लेकर बैल की जोड़ी बनाकर आखिर क्या करेगा? मम्मण मौन था। सम्राट ने महारानी को संबोधित कर कहा–यह दरिद्र नहीं, लोभी है। इसके पास पर्याप्त वैभव है, फिर भी कष्ट भोग रहा है। इसका दु:ख कोई दूर करने वाला नहीं है। क्योंकि इच्छा का कभी अन्त नहीं होता। ❑

ध्यान में सफलता पाएं

साध्वी राजीमती

जीवन तो सभी जीना चाहते हैं, पर वे सिर्फ सोचते रहते हैं जबकि ध्यान का पथ सोचने वालों के लिए नहीं होता। यह पथ सही दिशा और सही गति चाहता है। लक्ष्य के प्रति समर्पण चाहता है। आस्था और पुरुषार्थ से ही इसमें सफलता मिलती है। इसलिए जानना यह जरूरी है कि ध्यान की यात्रा में हमें क्या और कैसा पाथेय चाहिए?

ध्यान की सफलता की अपेक्षाएं-

1.	मन की चिंता कम करो तो	चंचलता मिट जाए।
2.	आकर्षण कम करो तो	आसक्ति मिट जाए।
3.	तामसिक आहार न करो तो	बीमारियां मिट जाए।
4.	पर-दर्शन बंद करो तो	एकाग्रता बन जाए।
5.	इच्छाएं कम करो तो	सुख का स्रोत खुल जाए।
6.	दिमाग ठंडा रखो तो	जीवन का स्वाद आ जाए।
7.	रीढ़ की हड्डी सीधी रखो तो	मनोबल बढ़ जाए।
8.	अधिक सोचना छोड़ दो तो	गहरी नींद का सुख मिल जाए।
9.	प्राण-शक्ति का संचयन करो तो	जीवन की दिशा बदल जाए।
10.	अल्पाहार का अभ्यास करो तो	स्वास्थ्य सुरक्षित रह जाए।
11.	हर रोज अभ्यास करो तो	ध्यान की पूर्व सुविधा हो जाए।

सूचना

जैन भारती अब नये कलेवर में

महासभा द्वारा प्रकाशित **जैन भारती** तेरापंथ समाज की प्रमुख पत्रिका है, जिसमें मुख्यतः जैन दर्शन से संबंधित उच्च कोटि की सामग्री तथा भारतीय जैन दर्शन के आलोक में तेरापंथ धर्मसंघ के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण प्रकाशित किए जाते हैं। इसके साथ ही इसमें साहित्यिक रचनाओं एवं मानव मूल्यों से संबंधित आलेख भी प्रकाशित होते हैं।

अभ्युदय परिपत्र महासभा एवं सभी तेरापंथी सभाओं के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है। इसका लक्ष्य पूरे देश में फैली तेरापंथी सभाओं और महासभा द्वारा संचालित आध्यात्मिक, सामाजिक एवं संघीय गतिविधियों की जानकारी लोगों को प्रदान करना है।

मार्च, 2015 से **जैन भारती** और **अभ्युदय** को सम्मिलित कर महासभा की एक सर्वांगीण पत्रिका के रूप में **जैन भारती** का प्रकाशन एक नये कलेवर में किया जाएगा। इसके प्रथम भाग में **जैन भारती** और द्वितीय भाग में **अभ्युदय** से संबंधित विषयों को शामिल किया जाएगा। दोनों पत्रिकाओं की मूल विषय-वस्तु को कायम रखते हुए उसकी गुणवत्ता को बढ़ाने का प्रयास किया जाएगा ताकि हर वर्ग के पाठकों के बीच इसका आकर्षण और लोकप्रियता बढ़े। मार्च, 2015 से **जैन भारती** का प्रकाशन महासभा के प्रधान कार्यालय, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-700 001 से किया जाएगा।

ज्ञातव्य है कि **जैन भारती** पहले महीने के पूर्व महीने की 28 तारीख को प्रकाशित की जाती थी। अब वह उसी महीने की 20 तारीख को प्रकाशित की जाएगी।

द्रष्टव्य है कि महासभा के आजीवन सदस्यों को **अभ्युदय** परिपत्र अब तक निःशुल्क प्रदान किया जाता था। मार्च, 2015 से उन्हें **जैन भारती** के रूप में नई पत्रिका तीन महीने तक निःशुल्क भेजी जाएगी। निवेदन है कि महासभा के सभी आजीवन सदस्य जून, 2015 से कृपया 200 रुपये का वार्षिक सदस्यता शुल्क या 2100 रुपये का आजीवन सदस्यता शुल्क प्रदान कर **जैन भारती** के ग्राहक बन जाएं। **जैन भारती** के वर्तमान ग्राहकों को यह पत्रिका यथावत प्रेषित की जाती रहेगी।

कमल कुमार दुगड़
अध्यक्ष

विनोद बैद
महामंत्री

आभार....

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि पूर्व में जनवरी,1989 से अप्रैल,1999 तक मुझे महासभा द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका जैन भारती के सम्पादन कार्य का मौका मिला। 13 साल बाद फिर जनवरी, 2013 से महासभा ने जैन भारती के सम्पादन का कार्य मुझे सौंपा। फरवरी, 2015 अंक तक यह दायित्व मैंने यथा सामर्थ्य निभाने का प्रयास किया। इस कार्य में मुझे आचार्य प्रवर, साध्वीप्रमुखाजी एवं अनेक साधु–साध्वियों का दिशा निर्देशन मिलता रहा। महासभा के पदाधिकारियों, सम्माननीय लेखकों, सुधी पाठकगण और सांखला प्रिंटर्स ने उल्लेखनीय सहयोग दिया। फरवरी, 2015 के अंक के साथ मैं प्रसन्नमना आप सबसे विदा लेते हुए सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं और इस कालखंड में हुई भूलों के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। सबके प्रति शुभकामनाएं। **—मुमुक्षु शान्ता जैन**

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती, फरवरी, 2015 ■ प्रेषण दिनांक 28 जनवरी, 2015
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2015-2017

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन

बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन

बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन

बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।